(गोविन्द माधव)

सम्पूर्ण गीतासार

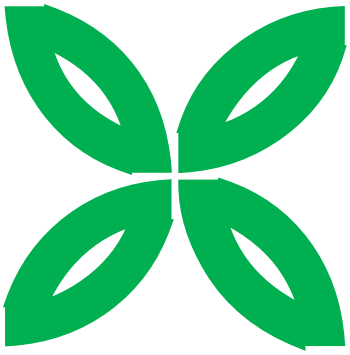

विनयावनत–

ब्रह्मशंकर शास्त्री

—: गीता जी का उद्देश्य मानव कल्याण :—

श्रीमद्भगवद्गीता का उद्देश्य मानव कल्याण के लिए है। समस्त मानव जाति इससे लाभ लेकर सत्य की खोज कर ले ऐसा इसका विशिष्ट उद्देश्य है। विशिष्ट सम्प्रदाय के विषयों का, किसी मत का उल्लेख श्री गीता जी में नहीं हुआ है वरन् श्रीभगवान ने सत्य और सत्य के तत्त्व की विषद व्याख्या इसमें प्रस्तुत की है। श्री गीता जी में वर्णित समस्त तथ्य प्रथमतः सैद्धान्तिक हैं और इसके सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रयोगात्मक रूप से परखा जा सकता है। मानव शरीर के संचालन की प्रक्रिया, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार जैसे सूक्ष्म तत्त्वों का निरूपण श्री गीता जी में विस्तार से किया गया है, जिसे पढ़कर हम उसके प्रयोगात्मक स्वरूप को स्वयं ही परख सकते हैं। इन्द्रियां कैसे कार्य करती हैं ? उनके विषयों की कार्यप्रणाली क्या है? मन का स्वरूप क्या है? और यह चंचल तथा प्रमथनशील मन कैसे कार्य करता है ? इसका संयमन कैसे होता है ? बुद्धि कैसे कार्य करती है? तथा अहंकार नामक तत्त्व मानव शरीर में किस प्रकार प्रभावी रहता है? इस सबका सब वर्णन श्री गीता जी में विस्तार से है। इस कारण बिना अपने मत के आग्रह के मनुष्य को अपने कल्याण हेतु श्री गीता जी का अध्ययन करना चाहिए तथा इसके प्रयोगात्मक स्वरूप को स्वयं भी परखना चाहिए।

सत्य तथा सत्य स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इसकी विस्तार से चर्चा श्री गीता जी में की गई है, जो कुछ वर्णित किया गया है उसको आचरण और व्यवहार में लाकर हम जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। हमारी क्या स्थिति है ? और हम किस स्थिति के साधक है ? इन समस्त तथ्यों का उल्लेख श्री गीता जी में किया गया है। जैसे हम अपने शरीर में उपस्थित ज्वर को नापने के लिए यंत्र का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार साधक अपने सांसारिक ज्वर को नापने के लिए श्री गीता जी में वर्णित तथ्यों को आधार बना सकता है। इस तथ्य का वर्णन स्थल–स्थल पर विषद रूप से श्री भगवान ने व्याख्यापित किया है। श्री गीता जी का ज्ञान समस्त मानव समुदाय के लिए है और कोई विशिष्ट सम्प्रदाय के लिए इसका उपदेश नहीं हुआ है। इस कारण हम सभी मानव मात्र को अपने कल्याण हेतु श्री गीता जी के ज्ञान का अध्ययन और अवलम्बन करना चाहिए। यही मानव जीवन का यथेष्ट तथ्य है।

–: भगवद्गीता के उपदेश की पृष्ठभूमि :–

आज से लगभग 5 हजार वर्षो पूर्व महाभारत काल माना जाता है। महाभारत काल द्वापर युग का अंत समय था। भगवान श्री कृष्ण का अवतरण इसी समय हुआ ऐसी ऐतिहासिक मान्यता है। महाराजा शान्तनु ने श्री गंगा जी से विवाह किया था जिससे उस काल के ऐतिहासिक पुरूष भीष्म पितामह का जन्म हुआ, तदोपरान्त दास राज की पुत्री सत्यवती से शान्तनु महाराज ने विवाह किया। उससे चित्रांगद का विचित्र वीर्य का जन्म हुआ। पितामह भीष्म ने सत्यवती के पिता दासराज को आजीवन विवाह न करने की प्रतिज्ञा दी थी जिसका उन्होंने पालन किया। विवाह के पूर्व सत्यवती से पाराशर मुनि के संयोग से महर्षि वेदव्यास का जन्म हुआ था। इन्हें श्री कृष्ण द्वैपायन भी कहा जाता है। सुखदेव जी महराज इन्हीं वेद व्यास के पुत्र थे। महर्षि वेद व्यास और उनके पुत्र सुखदेव जी अपने समय के वेदों और शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान थे। हम सभी महर्षि वेद व्यास के ऋणी है जिन्होंने वैदिक साहित्य को एक विशिष्ट रूप दिया तथा दार्शनिक, पौराणिक और ऐतिहासिक ग्रंथों का प्रणयन किया।

शान्तनु के पुत्र चित्रांगद को चित्रांगद नाम के गन्धर्व ने मार डाला। पितामह भीष्म ने अम्बिका और अम्बालिका से अपने सौतेले भाई विचित्र वीर्य का विवाह करवा दिया परन्तु उसकी मृत्यु निःसंतान ही हो गई। सत्यवती ने तब अपने पुत्र महर्षि वेद व्यास से प्रार्थना की वंश परम्परा चलाने हेतु अम्बिका तथा अम्बालिका से विवाह कर ले, परन्तु महर्षि वेदव्यास ने विवाह करने से मना कर दिया और अपने योग बल से पाण्डु और धृतराष्ट्र नाम के दो पुत्र उत्पन्न किए तथा एक दासी से विदुर नाम के पुत्र उत्पन्न हुए जो धर्म और नीति के मर्मज्ञ जाने जाते हैं। महाराजा पाण्डु ने कुन्ती और माद्री से विवाह किया तथा धृतराष्ट्र का विवाह गांधारी से हुआ। पाण्डु बड़े होने के कारण राजा बने तथा इनके दोनों पत्नियों से पांच पुत्र युधिष्ठिर,

भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव उत्पन्न हुए जो देवताओं के औरस पुत्र थे। धृतराष्ट्र के गांधारी से 100 पुत्र उत्पन्न हुए जिन्में दुर्योधन सबसे बड़ा था, जो महाभारत युद्ध का कारण माना जाता है।

पाण्डु की मृत्यु के समय पाण्डु के पांचों पुत्र की आयु बहुत कम थी। इसलिए राज्य के संचालन हेतु छोटे भाई धृतराष्ट्र को राजा बना दिया गया और विदुर को मंत्री बनाया गया तथा युधिष्ठिर को युवराज घोषित कर दिया गया। दुर्योधन के मन में पाण्डवों तथा माता कुन्ती के प्रति घृणा भाव था। वह उन्हें मारने की युक्तियों पर विचार किया करता था। इसी क्रम में उसने लाच्छागृह का निर्माण कराया तथा कुन्ती सहित पांचों पाण्डवों को मार डालने का प्रयास किया पर वे विदुर जी की सहायता से बच निकले और अपनी जान बचाने के लिए मारे–मारे घूमते रहे। द्रोपदी के स्वयंवर में पाण्डवों का पुनः प्रकटीकरण हो गया। पाण्डव द्रोपदी को जीतकर माता कुन्ती सहित हस्तिनापुर लौट आए। विवाद को समाप्त करने हेतु पाण्डवों को खाण्डव वन देकर राज्य का बॅटवारा कर दिया गया। खाण्डव वन को देवताओं की सहायता से पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया तथा देवताओं की कृपा से एक भव्य महल की रचना की, जिसमें जल के स्थान पर थल और थल के स्थान पर जल प्रतीत होता था। तत्पश्चात् पाण्डवों ने राज्यसूय यज्ञ किया तथा अपने चचेरे भाई कौरवों को भी आमंत्रित किया। दुर्योधन आदि कौरवों को राज्यसूय यज्ञ में पाण्डवों के भव्य महल को देखकर बड़ी ग्लानि हुई। ऐसा भी कहा जाता है कि दुर्योधन जल को थल समझ कर एक बार पानी में गिर गया जिस पर द्रोपदी ने दुर्योधन के लिए कुछ अपशब्द कहे जो महाभारत युद्ध का कारण बनें।

दुर्योधन यज्ञ के पश्चात अपने राज्य हस्तिनापुर लौट आया तथा पाण्डवों को नीचा दिखाने और अपने अपमान का बदला लेने की युक्ति सोंचने लगा, उसने अपने मामा शकुनी की सहायता से पाण्डवों को द्यूतक्रीडा अर्थात जुंआ खेलने के

लिए आमंत्रित किया। धृतराष्ट्र की ओर से द्यूतक्रीडा का आदेश पाकर पाण्डव जुंआ खेलने के लिए तैयार हो गए। पाण्डवों ने अपने पिता स्वरूप राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा को शिरोधार्य किया। द्युतक्रीडा आरम्भ हुई जिसमें मामा शकुनी ने छल से धृतराष्ट्र आदि का सम्पूर्ण राज्य जीत लिया तथा पाण्डव द्रोपदी को जुएं में हार गए। इस घटना के पश्चात् महारानी द्रोपदी को अपमानित करने के लिए चीरहरण जैसी घटना हुई, जिसे भगवान श्रीकृष्ण की सहायता से द्रोपदी ने अपनी लाज बचाई।

इस घटना के समय राज्य दरबार में धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण आदि सभी उपस्थित थे। दुर्योधन के आगे द्रोपदी के इस अपमान का प्रतिकार किसी ने नहीं किया। इसके उपरान्त यह तय हुआ कि पाण्डव 12 वर्ष तक वनवास में रहेंगे और एक वर्ष अज्ञातवास में रहेंगे तब उन्हें उनका राज्य वापस दे दिया जाएगा और यदि अज्ञातवास में वह पहचान लिए गए तो पुनः उन्हें 12 वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास भोगना पड़ेगा। 12 वर्ष तक वनवास में द्रोपदी तथा माता कुन्ती सहित पाण्डव मारे–मारे घूमते रहे। एक वर्ष राजा द्रुपद के यहां काटने के पश्चात् पुनः पाण्डवों ने अपने राज्य के अधिकार को मांगा जिस पर दुर्योधन ने स्पष्ट मना कर दिया। भगवान श्रीकृष्ण शान्तिदूत बनकर धृतराष्ट्र के दरबार में गए तथा पाण्डवों को पॉच गांव देने का प्रस्ताव किया जिस पर विवाद खत्म हो सकें। परन्तु दुर्योधन ने यह स्पष्ट कहा कि मैं युद्ध के बिना सुई की नोक के बराबर जमीन नहीं दूंगा। उसने अपने योद्धाओं की सहायता से भगवान श्रीकृष्ण को पकड़कर मारने का प्रयास किया। जिससे भगवान श्रीकृष्ण ने चक्र सुदर्शन से सब योद्धाओं को चकाचौंध कर दिया तथा महात्मा विदुर के यहां आकर विश्राम किया।

शान्ति के प्रस्ताव को निरस्त किये जाने के पश्चात् युद्ध अवश्यसम्भावी हो गया। पाण्डवों ने भगवान की श्रीकृष्ण की आज्ञा से तथा माता कुन्ती की सहमति से

युद्ध करना स्वीकार किया। युद्ध आरम्भ होने के पूर्व पाण्डवों तथा कौरवों ने अपने अपने पक्ष के राजाओं को युद्ध के लिए आमंत्रित किया। इसी क्रम में अर्जुन तथा दुर्योधन ने भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध के लिए सहायता की याचना की। भगवान श्री कृष्ण ने एक ओर अपने को प्रस्तुत किया तथा यह कहा कि मैं युद्ध नहीं करूंगा और दूसरी ओर अपनी नारायणी सेना को रख दिया। इस पर अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण को स्वीकार किया तथा दुर्योधन प्रसन्नता पूर्वक उनकी नारायणी सेना लेकर लौट आया क्योंकि युद्ध में सेना तथा वीरों का ही कार्य है। श्री भगवान का क्या होगा ? क्योंकि वह युद्ध भी नहीं करेंगे।

युद्ध की तैयारियां होने लगी। कौरवों के पक्ष में 11 अक्षोहणी सेना की तथा पाण्डवों के पक्ष में सात अक्षोहणी सेना थी। महर्षि वेद व्यास ने युद्ध को रोकने का बहुत प्रयास किया परन्तु वे त्रिकालज्ञ थे। इस कारण उन्हें युद्ध की निश्चितता के बारे में ज्ञात था। महर्षि वेद व्यास ने दरबार आकर धृतराष्ट्र से यह कहा कि आप नेत्रहीन हैं इस कारण यदि आप युद्ध को देखने की इच्छा रखते हैं तो मैं आपकों दिव्य दृष्टि दे सकता हूं जिससे आप दरबार में ही बैठकर युद्ध का सारा हाल जान सकते है। धृतराष्ट्र ने महर्षि वेद व्यास के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और उन्होंने कहा कि हम अपने परिवार के इस भीषण विनाश को नहीं देखना चाहता परन्तु युद्ध में क्या घटनाएं हो रही है? इसकी जानकारी अवश्य रखना चाहूंगा। इस कारण दिव्य दृष्टि हमारे सहयोगी मंत्री संजय को दे दें। उनसे युद्ध का हाल मैं जान लूंगा। दिव्यदृष्टि एक प्रकार की वह शक्ति है जिसके माध्यम से आप एक स्थान पर बैठकर दूर किसी भी घटना को देख सकते हैं तथा किसी के मन में क्या विचार आया इसको भी जान सकते हैं।

महर्षि वेद व्यास संजय को दिव्य दृष्टि देकर चले गए। महाभारत महाकाव्य में ऐसा उल्लेख आता है कि संजय दस दिनों तक युद्ध स्थल में ही रहे जब

पितामह भीष्म को अर्जुन ने बाणों की सरसै, या पर गिरा दिया तो इसका समाचार लेकर संजय धृतराष्ट्र को बताने के लिए महल में आये। धृतराष्ट्र को पितामह भीष्म की इस स्थिति को जानकर बहुत कष्ट हुआ। क्योंकि पितामह भीष्म बहुत वीर थे और उन्होने परशुराम से शस्त्र विद्या सीखी थी। वह उस समय अजेय समझे जाते थे तथा उनके पारिवारिक सम्बन्ध में वे ताऊ थे। इस पर धृतराष्ट्र ने संजय से प्रश्न किया, जो महाभारत के भीष्म पर्व के 25वें अध्याय से आरम्भ होता है। इस प्रकार यहीं से श्री गीता जी के ज्ञान का आरम्भ होता है। श्री गीता जी में 18 अध्याय है। धतृराष्ट्र ने संजय से यह प्रश्न किया कि धर्म भूमि कुरूक्षेत्र में एकत्रित हुए मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने युद्ध में क्या किया ? यह श्री गीता जी के प्रथम अध्याय का प्रथम श्लोक है।

उपरोक्त तथ्य का वर्णन श्री गीता ज्ञान की पृष्ठभूमि को समझने के लिए वर्णित किया गया। इसका विषद उल्लेख महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत महाकाव्य ग्रंथ में है जिसमें एक लाख श्लोक हैं और यह ग्रंथ विश्व का सबसे वृहद ग्रंथ है जो 18 अध्यायों में विभक्त है। हमें विशिष्ट जानकारी के लिए इस महाभारत महाकाव्य का अध्ययन करना चाहिए। इस ग्रंथ को पंचम वेद की मान्यता प्राप्त है। तत्पश्चात् श्री गीता जी के ज्ञान का प्रथम अध्याय आरम्भ किया जा रहा है जो भी युद्ध के आरम्भ की घटना के रूप में है जिसका आप अवलोकन कीजिए।

प्रथमोऽध्यायः

संजय ने धृतराष्ट्र के प्रश्न के उत्तर में यह कहा कि जब दोनों सेनाएं कुरूक्षेत्र के मैदान में आमने सामने हैं खड़ी हो गयी हैं तो दुर्योधन ने पाण्डवों की व्यूहाकार सेना को खडा देखकर अपने गुरू द्रोणाचार्य के निकट जाकर यह कहा कि आपके बुद्धिमान शिष्य और द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा पाण्डवों की इस विशाल सेना का अवलोकन कीजिए। दुर्योधन ने आगे कहा कि इस विशाल सेना में विशाल धनुष वाले युद्ध में भीम और अर्जुन के सदृश शूरवीर सात्यकि, विराट तथा महारथी द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान तथा वीर्यवान काशीराज, पुरूजित, कुन्तीभोज और मनुष्यों में उत्कृष्ट शैब्य, विक्रमी युधामन्यु और उत्तमौजा और सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु तथा द्रोपदी के पांचों पुत्र यह सब के सब महारथी हैं। हे गुरूदेव हमारे पक्ष में जो विशिष्ट योद्धागण हैं उन्हें भी मैं आपकी संज्ञानता के लिए बता रहा हूँ। आप स्वयं, पितामह भीष्म, दानवीर कर्ण, संग्राम विजयी कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा विशिष्ट योद्धा हैं। इन सभी योद्धाओं के अतिरिक्त भी अनेक योद्धाओं ने अनेक प्रकार के शस्त्र और अस्त्रों से युक्त होकर अपने जीवन की आशा को त्याग कर हमारे लिए युद्ध करना स्वीकार किया है। पितामह भीष्म के द्वारा रक्षा की जाने वाली हमारी यह सेना जीते जाने में असंभव है परन्तु भीम के द्वारा रक्षित पाण्डुवों की सेना को जीता जाना सहज है। तत्पश्चात् दुर्योधन ने सभी की ओर संकेत करके यह कहा कि आप सभी लोग सर्व प्रकारेण पितामह भीष्म की रक्षा करें। क्योंकि उनके जीवित रहते हमें युद्ध में कोई नहीं हरा सकता।

दुर्योधन के ऐसा कहने पर पितामह भीष्म जो कौरवों में अति वृद्ध थे सिंह के समान नाद करते हुए गरज कर शंख बजाया। इसके उपरान्त अनेक प्रकार के युद्ध के बाजे नगाडे, ढोल, मृदंग आदि एक साथ बजने लगे। इन बाजों के बजने से अत्यंत प्रचण्ड ध्वनि हुई। इसी ध्वनि के मध्य सफेद घोड़ों से सज्जित उत्तम रथ में स्थित भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने दिव्य शंख बजाए। भगवान श्रीकृष्ण ने पांचजन्य, अर्जुन ने देवदत्त, भीम ने पौण्ड्र नामक महाशंख बजाया। युधिष्ठिर ने अनन्त विजय, नकुल और सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजाए। श्रेष्ठ धनुषवाले काशी नरेश ने और महारथी शिखण्डी ने तथा घृष्टद्युम्न और राजा विराट और अजेय सात्यकि ने महाराजा दुप्रद, द्रोपदी के पांचों पुत्र तथा अर्जुन ने भी पृथक्–पृथक् प्रकार के शंख बजाऐ। पाण्डव पक्ष के शंखों की ध्वनि ने कौरव पक्ष के हृदय में भय का भाव उत्पन्न कर दिया। तत्पश्चात् युद्ध आरम्भ होने की स्थिति को समझ कर अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से यह कहा कि मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा कीजिए जिससे मैं अपने पक्ष के तथा कौरवों पक्ष के योद्धाओं का भलीभांति निरीक्षण कर सकूं और यह जान सकूं कि मुझे युद्ध रूपी व्यवसाय में किन किन योद्धाओं से युद्ध करना पड़ेगा। अर्जुन ने आगे कहा कि मैं यह भी जानना चाहता हूं कि अनीति के पक्ष का समर्थक दुर्योधन है और उसके कल्याण की इच्छा को लेकर कौन–कौन से राजा युद्ध में कौरवों के पक्ष में उपस्थित हुए है?

अर्जुन के द्वारा ऐसी प्रार्थना किये जाने पर भगवान श्रीकृष्ण ने विशिष्ट रथ को दोनों सेनाओं के मध्य जाकर खड़ा किया और उस स्थल पर विशेष रूप से रथ को स्थित किया जहां पर भीष्म और गुरू द्रोण के रथ थे। अर्जुन ने उन दोनों सेनाओं में अपने ताऊ चाचा पितामह, आचार्यो, मामाओं, भाईयों, पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, ससुरों, तथा अपने प्रिय पात्रों को युद्ध की इच्छा से उपस्थित देखा। उक्त समस्त स्वजनों को देखकर अर्जुन अत्यन्त दया से भर गया और विषाद करते हुए उसने भगवान श्री कृष्ण से यह वचन कहे–

हे भगवन् ! इस युद्ध भूमि में उपस्थित युद्ध की इच्छा रखने वाले अपने स्वजनों को देखकर मेरे समस्त अंग ढीले पड़े जा रहे हैं और हमारा मुख अनायास ही सूख रहा है तथा मेरे शरीर में कम्पन ओर रोमांच हो रहा है। हमारा प्रिय धनुष गाण्डीव हाथ से स्वतः गिर रहा है और हमारी त्वचा का तापमान भी बढ़ गया है। मेरा मन संशय युक्त हो चुका है और मैं अब खड़े रहने की स्थिति में भी नहीं हूँ। हे भगवन्! मैं शकुनों को अपने प्रतिकूल आभास कर रहा हूँ। अपने ही स्वजनों को मारकर अपना भला नहीं देख रहा। हे भगवन्! मुझे न तो विजय की आकांक्षा है और न ही राज्य तथा उससे मिलने वाले सुख की अभिलाषा रह गयी है। हे गोविन्द! ऐसे राज्य को लेकर मैं क्या करूँगा अथवा राज्य के भोग से मुझे क्या प्राप्त होगा ? हम जिन लोगों के लिए राज्य, भोग, सुख आदि की इच्छा कर रहे है वे सब अपने जीवन और अपनी सम्पत्ति की आशा का परित्याग करके युद्ध में मरने मारने को उद्धत है। आचार्यजन, ताऊ, चाचे, लड़के, पितामह, मामा, श्वसुर, पौत्र, साले तथा अन्य भी दूसरे सम्बंधी लोग इस युद्ध में उपस्थित हैं। इन सभी को मारकर मैं पृथ्वी का क्या तीनों लोकों के राज्य का स्वामी नहीं बनना चाहता। हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के विधर्मी पुत्रों को मारकर हमें उसके फल के रूप में पाप ही प्राप्त होगा। हे माधव! अपने भाईयों अर्थात् धृतराष्ट्र के पुत्रों को हम मारने के लिए योग्य नहीं है। कोई मनुष्य अपने ही कुटुम्ब को मारकर कैसे सुखी हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता है। जब मनुष्य में लोभ बहुत बढ़ जाता है तो उसका चित्त भी भ्रष्ट हो जाता है और वह मित्रों से द्रोह और अपने कुल के विनाश रूपी दुष्कर्म को भी नहीं देखता। परन्तु हमें शास्त्र मर्मज्ञ के रूप में होने के कारण इस दोष को देखकर पाप से निवृत्त होने पर विचार अवश्य करना चाहिए। हे भगवन! जब परिवार में पाप अधिक बढ़ जाता है तो परिवार की स्त्रियां अत्यंत दूषित हो जाती हैं। स्त्रियों के भ्रष्ट हो जाने पर वर्णसंकर उत्पन्न हो जाता है जो पूरे कुल को ही नरक में ले जाने के लिए पृथक् होता है। इसमें श्राद्ध और तर्पण की क्रिया भी समाप्त हो जाती है तथा कुल के पितर लोग भी दुर्गति को प्राप्त होते हैं। इसलिए हम सभी बुद्धिमान हैं और हमें इस भयंकर पाप से हटने का प्रयास करना चाहिए तथा राज्य और सुख के लोभ के लिए अपने स्वजनों की हत्या करने के लिए उद्यत नहीं होना चाहिए। यदि मुझे शस्त्र विहीनता की स्थिति में धृतराष्ट्र के पुत्र प्रतिकार न करने के कारण मार भी डाले तो यह मरना हमारे लिए श्रेयस्कारी होगा। इस प्रकार अर्जुन श्री भगवान के प्रति ऐसा कहकर शोक से अत्यंत उद्विग्न होकर दुःखी मन से अपने गाण्डीव धनुष को बाणों के सहित छोड़कर रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गया।

इस प्रकार श्री भगवान के ॐ तत्सत् रूपी नाम से आरम्भ उपनिषद ब्रह्म विद्या, योगशास्त्र रूपी श्री गीता जी का श्रीकृष्ण अर्जुन विषाद रूपी पहला अध्याय समाप्त हुआ।

द्वितीयोऽध्यायः

संजय ने कहा कि इस प्रकार अत्यंत करूण से युक्त और आसुओं से पूरित नेत्रों वाले शोक से व्याप्त अर्जुन के लिए भगवान श्री कृष्ण ने यह वचन कहे।

हे अर्जुन ! तुझको इस युद्धस्थल जैसी विषम परिस्थिति में किस कारण से यह अज्ञानता प्राप्त हो गयी है। ऐसी अज्ञानता बुद्धिमान मनुष्यों के द्वारा व्यवहार में नहीं लायी जाती और संसार में न तो इससे कीर्ति मिलती है और न ही मृत्यु के उपरान्त इससे स्वर्ग प्राप्त होता है। हे अर्जुन! ऐसी कार्यरता आप जैसे श्रेष्ठ पुरूष के लिए अच्छी प्रतीत नहीं होती है। इस कारण तुम हृदय की निकृष्ट दुर्बलता का परित्याग करके युद्ध हेतु उद्यत हो।

अर्जुन ने कहा हे भगवान ! मैं अपने गुरू द्रोण और पितामह भीष्म के समक्ष युद्ध कैसे करूंगा? क्योंकि यह दोनों हमारे लिए पूज्य हैं। अपने पितामह और आचार्य को मार कर मैं अपना भला नहीं देखता। इससे अच्छा होगा कि मैं भिक्षा से अपने जीवन का निर्वाह कर लूँ, क्योंकि इस जगत में आचार्य और पितामह के खून से सने हुए अर्थ और कामना रूपी भोगों को ही तो युद्ध जीतने के बाद भोगूंगा। मैं इस समय बहुत भ्रमित हूँ कि हमें यह ज्ञात नहीं है कि कौन सा कार्य उचित है और कौन सा कार्य अनुचित है। इस कारण हम किंकर्तव्यविमूढ की स्थिति में है तथा हमें यह भी ज्ञात नहीं है कि हमारी विजय होगी अथवा हमारे प्रतिपक्षी कौरवों की विजय होगी। मेरा स्वभाव कायरता के कारण उद्विग्न हो गया है। धर्म और अधर्म के संदर्भ में मेरा चित्त मोहित हो चुका है। इस कारण मैं आपसे अपने निश्चित श्रेय का मार्ग जानना चाहता हूँ। क्योकि मैं आपका शिष्य हूँ और आपकी शरणागत हूँ इस कारण मेरे उचित मार्ग को प्रशस्त करें। मेरा यह विचार है कि मैं ऐसी कोई विधि नहीं देखता हूँ जिससे इन्द्रियों को सुख प्राप्त करने वाले शोक को दूर किया जा सके। क्योंकि ऋद्धि सिद्धि से परिपूरित राज्य और देवलोक के आधिपत्य का उद्देश्य केवल इन्द्रिय सुख ही हैं।

संजय ने कहा कि अर्जुन ने भगवान श्री गोविन्द से यह स्पष्ट कह दिया कि ऐसी परिस्थिति में मैं युद्ध नहीं करूंगा और ऐसा कहकर अर्जुन चुप हो गए। इसके उपरान्त भगवान श्रीकृष्ण ने शोक से आवृत अर्जुन को प्रसन्न मुद्रा में होकर यह उपदेश दिया।

श्री भगवान ने कहा –

1– जो बुद्धिमान पुरूष है वे इस संसार में रह रहे लोगों के लिए और जो मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं उनके लिए भी किसी प्रकार का दुःख नहीं करते। यहीं बुद्धिमान पुरूष का विशिष्ट लक्षण है।

2– प्रत्येक समय में प्रत्येक व्यक्ति रहता है। हम सभी लोग सृष्टि के आदि से अब तक अर्थात् भूतकाल में नित्य रहे। वर्तमान में भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

3– मनुष्य की इन्द्रियों के जो विषय हैं कुछ समय तक ही मनुष्य को सुख देते हैं इसलिए उनसे प्रतीत होने वाला सुख और दुःख तथा शीत और ऊष्ण भी क्षणभंगुर हैं, जो पुरूष इन्हें सह लेता है। वहीं मुक्ति के योग्य होता है। सुख दुःख को जो व्यक्ति समान समझता है और सुख में प्रसन्न नहीं होता तथा दुःख में व्याकुल नहीं होता वह ही मुक्ति के योग्य होता है।

4– संसार में असत वस्तु की सत्ता नहीं है और सत का अभाव नहीं है। संसार में जितनी भी वस्तुएं है वे सब असत हैं अर्थात् विनाश होने वाली हैं परन्तु एक परमात्मा ही सत है जो तीनों कालों में रहता है। इस तथ्य को ही तत्त्वज्ञानी पुरूष जान लेता है।

5– हे अर्जुन ! परमात्मा अविनाशी है और उसका अंश जीव भी अविनाशी है। इस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी सक्षम नहीं है।

6– आत्मा नित्य और अविनाशी है। इस प्रकार आत्मा को नित्य और अविनाशी जो जान जाता है वह कैसे किसको मारता है? और कैसे किसको मरवाता है? अर्थात् सभी के प्रति हिंसा के भाव का परित्याग कर देता है। 7– आत्मा के समस्त शरीर नाशवान कहे गए हैं परन्तु आत्मा विनाशशील धर्म से पृथक् है और इसको मारने में कोई भी सक्षम नहीं है।

8– मनुष्य जैसे पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण कर लेता है वैसे ही आत्मा भी पुराने शरीरों का परित्याग करके नए शरीरों को धारण कर लेती है।

9– समस्त प्राणी जन्म से पहले भी अप्रकट थे अर्थात् प्रतीत नहीं हो रहे थे और मृत्यु के पश्चात् भी अप्रकट हो जायेंगे अर्थात् प्रतीत नहीं होंगे और केवल बीच में ही अर्थात् जीवन काल में ही प्रकट रहते है। इस कारण जीवन के विषय में कोई शोक करना निरर्थक है।

10– सुख और दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय को एक समान समझ कर मनुष्य को अपने कर्तव्य कर्मो का आचरण करना चाहिए। इस प्रकार का आचरण करने वाला मनुष्य कभी पाप को प्राप्त नहीं होता है।

11– तत्ववेत्ता मनुष्य का शास्त्रों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है जितना समुद्र को प्राप्त होने के पश्चात् एक छोटे से तालाब में रह जाता है। क्योंकि शास्त्रों का प्रयोजन ही तत्त्व की प्राप्ति है और यह प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर शास्त्रों के अर्थ का अभिप्राय समाप्त हो जाता है।

12– मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार परमात्मा ने दिया है और उन कर्मो के परिणाम का अधिकार उसने स्वयं अपने पास रखा है। इस कारण कर्म फल की आकांक्षा का परित्याग करके मनुष्य को निष्काम भाव से बिना आसक्त हुए कर्मो का आचरण करना चाहिए।

13– आशक्ति का परित्याग करके और कर्म की सिद्धि और असिद्धि में सम्भाव से शास्त्रसंगत कर्मो का आचरण करना चाहिए। इस प्रकार का आचरण करने वाला पुरूष विशेष हो जाता है।

14– जो मनुष्य समस्त प्रकार की कामनाओं का परित्याग कर देता है और स्वयं से स्वयं में ही संतुष्ट रहता है वह मनुष्य स्थिर बुद्धि कहलाता है, क्योंकि अनेक प्रकार की सांसारिक कामनाएं ही बुद्धि की अस्थिरता का कारण है।

15– जो मनुष्य दुःखों को प्राप्त होकर उद्विग्न नहीं होता है और सुखों को प्राप्त होकर प्रसन्नता का आभास नहीं करता है। इस प्रकार के श्रेष्ठ पुरूष को स्थिर बुद्धि पुरूष कहा जाता है। 16– सुख और दुःख केवल परिस्थितियां हैं, जो हमारे अपने कर्मो के अनुसार ही परिवर्तित हुआ करती है इसलिए मनुष्य को सुख और दुःख को एक समान समझना चाहिए।

17– कछुआ जिस प्रकार से समस्त अंगों को प्रतिकूलता आने पर समेट लेता है वैसे ही मनुष्य को सांसारिक विषयों में प्रतिकूलता का आभास करना चाहिए और अपनी इन्द्रियों को समस्त सांसारिक विषयों

से समेट लेना चाहिए। इस प्रकार सांसारिक विषयों से अपनी इन्द्रियों को समेट लेने वाले पुरूष की बुद्धि स्वतः स्थिर रहती है।

18– इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ग्रहण न करने वाले साधक के विषय तो निवृत हो जाते है परन्तु रस निवृत नहीं होता है। जब साधक को परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है तो उसका रस भी निवृत हो जाता है। संसार में जो आनन्द का आभास है इसे ही रस का स्वरूप मानना चाहिए।

19– मनुष्य जब सांसारिक विषयों का ध्यान करता है तो उसे सांसारिक विषयों के ध्यान से ध्यान किये जाने वाले विषयों के प्रति आसक्ति हो जाती है और आसक्ति ही मनुष्य में अनेक प्रकार की कामनाओं को उत्पन्न करती है। कामनाओं में जब किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न होता है तो क्रोध की स्वतः ही उत्पत्ति हो जाती है। क्रोध की उत्पत्ति होने से मनुष्य में सम्मोह उत्पन्न हो जाता है और सम्मोह के कारण मनुष्य की स्मृति नष्ट हो जाती है तथा स्मृति के विनाश से बुद्धि भी नष्ट हो जाती है और बुद्धि के विनाश होने से मनुष्य का निश्चित पतन हो जाता है।

20– सामान्य लोगों के लिए जो रात्रि के समान है वह सयंमी पुरूषों के लिए दिन है तथा जिसमें सभी सांसारिक प्राणी जागते हैं वह संयमी पुरूष के लिए रात्रि के समान है। अर्थात् समस्त सांसारिक प्राणी सांसारिक विषयों में जागते हैं और संयमी पुरूष उन विषयों को अपने से पृथक् कर लेता है। इसलिए समस्त सांसारिक विषय उसके लिए रात्रि के समान हो जाते हैं। जो साधक समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है तथा अहंकार से रहित हो जाता है। समस्त सांसारिक वस्तुओं की आवश्यता की अनुभूति का समापन करके स्पर्हारहित हो जाता है और सभी प्रकार की ममता का समापन कर देता है वह मनुष्य परमात्मा की निश्चित अनुभूति कर लेता है।

21– समस्त प्रकार की सांसारिक कामनाओं का परित्याग करने वाला तथा संसार के विषयों वस्तुओं व्यक्तियों से ममता का परित्याग कर देने वाला और अपने मिथ्या स्वरूप को जानकर उससे निवृत्त हो जाने वाला मनुष्य विशिष्ट हो जाता है। ऐसे विशिष्ट पुरूष को परमात्मा नित्य प्राप्त रहता है तथा उसे परमात्मा की नित्य अनुभूति हुआ करती है। यह विशेष स्थिति है। जिसे ब्राह्मी स्थिति कहा जाता है। यह बड़े प्रयास से आती है और साधक को इस कारण समस्त कामनाओं का परित्याग करके ममता रहित, अहंकार रहित और स्पर्हारहित होने हेतु प्रयत्न करना चाहिए। यही सिद्धि का मूल मंत्र है। जिसका आचरण प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए।

सांख्ययोग–

तृतीयोऽध्यायः

1– इस संसार में साधना के दो साधन है, जिन्हें कर्मयोग और ज्ञान योग कहा जाता है। कर्मयोगी कर्मयोग का आचरण करता है तथा ज्ञानयोगी ज्ञानयोग साधन का अवलम्बन करता है।

2– मनुष्य सांसारिक कर्मो के न करने से निष्कर्मता को प्राप्त नहीं हो सकता है और ऐसी स्थिति में उसे कर्मो से प्राप्त होने वाली सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है।

3– प्रत्येक मनुष्य को कर्म करना पड़ता है। यह कर्म करना हमारी परवशता है। क्योंकि हम सभी प्रकृति से उत्पन्न तीन गुणों सत्त्व, रज, तम गुणों के अधीन रहकर ही नाना प्रकार के सांसारिक कर्म करते हैं।

4– जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को विषयों से रोक कर और मन से विषयों का चिंतन करता है उसका यह आचरण मिथ्या आचरण है और ऐसे व्यक्ति को मिथ्याचारी कहा जाता है। इस कारण मन के द्वारा इन्द्रियों को सयंमित करके मनुष्य को आचरण करना चाहिए। यही कर्मयोग का आचरण है तथा श्रेष्ठ आचरण है।

5– मनुष्य को निरन्तर शास्त्रसम्मत कर्म करने चाहिए, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा शास्त्र सम्मत कर्म करना कल्याणप्रद है। कर्म न करने से मनुष्य के जीवन का निर्वाह भी नहीं हो सकता है। इस कारण कर्म करना सभी के लिए यथेष्ट है।

6– कर्तव्य कर्मो का आचरण करते रहने से और उनमें निष्काम भाव रखने से मनुष्य कर्मो से बंधता नहीं है। इस कारण मनुष्य को निरन्तर अपने कर्तव्य कर्मो का ज्ञान रखकर उनका आचरण अवश्य करना चाहिए।

7– सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ब्रह्मा ने मनुष्यों के लिए कर्तव्य कर्मो का विधान किया था और देवताओं को कर्तव्य कर्मो के फल के लिए पर्याप्त अधिकार प्रदान किये थे इस कारण जो मनुष्य कर्तव्य कर्मो का आचरण करता है उन्हें देवतागण स्वयं ही उनकी इच्छित वस्तुएं प्रदान कर देते हैं । यह एक स्वाभाविक क्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है। मनुष्य को कर्तव्य कर्मो का ही आचरण करना चाहिए।

8– जो मनुष्य संसार की समस्त वस्तुओं का उपभोग स्वयं ही करना चाहता है और अपने तथा अपने परिवार के लिए ही कमाता है। दूसरों के उपयोग हेतु उनको नहीं लगाता है वह व्यक्ति निश्चय ही चोर है। हमें अपनी शास्त्रसम्मत कमाई से दूसरों के हित के लिए धन अवश्य देना चाहिए और यदि ऐसा हम नहीं करते है तो हम पाप के भागी होते हैं।

9– समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का कारण अन्न है। अन्न की उत्पत्ति का कारण वर्षा है। वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञ की उत्पत्ति कर्मो से कही गयी है। कर्मो का प्रकाट्य पवित्र वेदों से हुआ है और वेद परमात्मा की वाणी के रूप में मानव मात्र के समक्ष है। इस कारण सर्वव्यापी परमात्मा में ही कर्म की प्रतिष्ठा है। ऐसा समझ कर हमें मानव मात्र के कल्याण और हित के लिए कर्मो का सम्पादन करना चाहिए।

10– जो साधना की परकाष्ठा पर पहुंचा हुआ साधक है वह आत्मतृप्त, आत्मसंतुष्ट और आत्मरत हो जाता है, ऐसे साधक के लिए संसार में कोई कर्तव्य कर्म अवशेष नहीं रह जाता है क्योंकि उसका कर्म करने और न करने से कोई प्रयोजन ही नहीं बचता। इस कारण ऐसे साधक निष्काम भाव से संसार के हित के लिए कर्म करते रहते हैं। 11– संसार की आसक्ति से विमुक्त होकर जो मनुष्य कर्तव्य कर्मो का आचरण करता

है। वह निश्चय ही परमात्मा की अनुभूति कर लेता है इसलिए परमात्मा की अनुभूति में कर्तव्य कर्मो का आचरण भी एक साधन है।

12– परमात्मा के लिए प्रत्येक वस्तु उपलब्ध है अर्थात् प्राप्त है। फिर भी वह सृष्टि रूपी महान कर्तव्य कर्म करता है क्योंकि परमात्मा ही यदि कर्तव्य कर्मो का आचरण करना छोड दे तो अन्य लोग भी कर्तव्य कर्मो के आचरण से विमुख हो जायेंगे और वे भी कर्तव्य कर्मो का आचरण छोड़ देंगे इसलिए परमात्मा निरन्तर ही अपने कर्तव्य कर्मो का सम्पादन करता रहता है।

13– सभी प्रकार के कर्म प्रकृति के द्वारा उत्पन्न त्रिगुणों के आधार पर ही किये जाते है परन्तु अहंकार से आवृत अज्ञानी मनुष्य अपने को कर्ता मान लेता है जबकि प्रकृति के द्वारा उत्पन्न किये गए गुणों के द्वारा किये जाने वाले कर्म की सत्यता को जान कर तत्त्वदर्शी पुरूष कर्तापन के अहंकार से निवृत हो जाता है।

14– परमात्मा को सम्पूर्ण कर्मो का अर्पण कर देना चाहिए तथा साधक को आशा रहित, ममतारहित, संसार के विषयों के ज्वर से रहित हो जाना चाहिए। जो मनुष्य ऐसा मानकर उसका अनुकरण करते हैं वे समस्त प्रकार के कर्म बंधनों से मुक्त हो जाते हैं और जो नहीं करते हैं वे ही कर्मबंधन में फंसे रहकर पुनः जन्म और पुनः मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

15– मनुष्य को इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषयों में जो रागद्वेष है उसमें कभी भी नहीं पड़ना चाहिए अर्थात् उनसे अपनी स्थिति समाप्त कर लेनी चाहिए क्योंकि राग और द्वेष ही मनुष्य के कल्याणकारी मार्ग के प्रमुख बाधक हैं। इसलिए राग द्वेष को समाप्त करने का प्रयास निश्चित रूप से करना चाहिए।

16– सांसारिक कामनाओं तथा सांसारिक कामनाओं की बाधा से उत्पन्न क्रोध ही पाप का मूल कारण है। इस कारण हम सभी को सांसारिक कामनाओं का समापन करने का प्रयास करना चाहिए। जितनी सांसारिक कामनाएं अधिक मात्रा में उत्पन्न होंगी उतना ही पाप का संचय बढेगा।

17– अग्नि को धुंआ ढक लेता है तथा दर्पण को मल ढक लेता है और जेर से गर्भ ढका रहता है। उसी प्रकार सांसारिक कामनाओं से मनुष्य का ज्ञान ढक जाता है। इस कारण मनुष्य में अज्ञानता उत्पन्न करने का प्रमुख कारण सांसारिक कामनाएं ही मानी जाती है।

18– इन्द्रियां, मन, बुद्धि ही कामनाओं के वास स्थान कहे जाते हैं अर्थात् सांसारिक कामनाएं इन्द्रियों में रहती हैं। मन में रहती हैं और बुद्धि में भी उनका निवास स्थान है। इस प्रकार कामनाऐं इन्द्रियों, मन और बुद्धि में रहकर नाना प्रकार के सांसारिक कर्मो के सम्पादन का हेतु हो जाती हैं। हम सभी को देहाभिमानी बनाकर निरन्तर मोहित करती रहती हैं।

19 – हमें इन्द्रियों को वश में करके, मन को संयमित करके बुद्धि को परमात्मा की ओर उन्मुख करके कामनाओं के विनाश का प्रयास करना चाहिए क्योंकि कामनाऐं ही ज्ञान और विज्ञान के विनाश का कारण मानी जाती हैं। इसलिए हमें कामनाओं का प्रयत्नपूर्वक समापन करना चाहिए।

20– शरीर से इन्द्रियॉ श्रेष्ठ हैं। इन्द्रियों से उनका स्वामी मन श्रेष्ठ है। मन से बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धि से भी कामनाओं को प्रबल कहा जाता है। इस कारण जो मनुष्य अपने हित का आकांक्षी होता है वह स्वयं को कामनाओं से विमुक्त करने का प्रयास करता है।

कर्मयोग–

ॐ

चतुर्थोऽध्यायः

1– श्री भगवान ने यह कहा कि पूर्वोक्त प्रकार से जिस अविनाशी योग का वर्णन मैने किया है उस योग को पहले सृष्टि के आदि में मैने सूर्य को बताया था। उसके पश्चात् सूर्य ने विवस्वान मनु को तथा उन्होंने राजा इक्ष्वाकु को बताया। इस प्रकार यह अविनाशी योग परम्परा से प्राप्त होता हुआ राज ऋषियों तक पहुंच गया और उसी अविनाशी योग को मैने हे अर्जुन! तुमको बताया है।

2– अर्जुन ने संदेह प्रकट किया कि सूर्य की उत्पत्ति तो बहुत पुरानी है अर्थात् सृष्टि के आरम्भ की है और आप की उत्पत्ति वर्तमान में हुई है। इसलिए मैं यह कैसे जानूँ? कि आपने इस उपदेश को सूर्य के प्रति कहा था।

3– श्री भगवान ने अर्जुन के इस प्रश्न का स्पष्ट निराकरण किया और कहा कि हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं परन्तु मैं उन समस्त जन्मों को जानता हूँ परन्तु तुम अपने पूर्व जन्मों को नहीं जानते, क्योंकि तुम्हारी पूर्व जन्मों की स्मृति मैने विस्मृत कर दी है।

4– श्री भगवान ने कहा कि मैं सम्पूर्ण प्राणियों का ईश्वर हूँ अजन्मा और अविनाशी हूँ और अपनी प्रकृति को अपने अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट हो जाता हूँ। इस प्रकार मैं समस्त प्राणियों का महान ईश्वर भी हूँ।

5– जब संसार में अधर्म की बहुत वृद्धि हो जाती है और धर्म का पतन सा प्रतीत होता है तो मैं स्वयं को इस जगत में अवतरित कर लेता हूँ। साधु पुरूषों की रक्षा हेतु तथा दूषित आसुरी सत्ता के विनाश के लिए और धर्म की स्थापना हेतु युग युग में मेरा अवतरण होता रहता है। जिससे यह सृष्टि की व्यवस्था चला करती है।

6– मेरे जन्म और कर्म दोनों ही दिव्य अर्थात् अलौकिक हैं जो मेरे अलौकिक जन्म और कर्मो को जान लेता है अर्थात् उसकी दिव्यता का आभास कर लेता है तो जब उसकी मृत्यु होती है उसके पश्चात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। 7– ज्ञान तप से पवित्र हुए मेरे आश्रित होकर मुझमें तन्मय हुए राग भय क्रोध से विगत हो गए।

बहुत से सिद्ध पुरूष मेरे स्वरूप को अब तक प्राप्त हो चुके हैं। इसलिए तुमको भी ज्ञान से पवित्र होना है मेरे आश्रय में रहना है। मुझमें अपनी तन्मयता रखनी है तथा राग भय क्रोध का परित्याग कर देना है। ऐसा करने से तुम भी मेरे स्वरूप में स्थित हो जाओगे और अंततः मुझे ही प्राप्त होगे।

8– श्री भगवान ने कहा कि जो कोई भक्त मुझको जिस विधि से भजता है जैसा उसका आचरण मेरे प्रति होता है जैसा भाव वह मेरे प्रति प्रकट करता है वैसे ही मैं भी उसे भजता हूं और मेरा भी भाव वैसा ही उस भक्त के प्रति हो जाता है। यह विशेष बात है।

9– मैने ही सृष्टि के आरम्भ में चार वर्णो की स्थापना गुण कर्मो के आधार पर की थी तथा सृष्टि की रचना जैसा विशाल कार्य भी किया था परन्तु इस विशाल कार्य के पश्चात् भी मुझ अविनाशी को अकर्ता ही समझें क्योंकि कर्मफलों की आवश्यकता की अनुभूति मुझे नहीं होती है यही मेरा विशिष्ट लक्षण है।

10– मुझे न तो कर्मो में लिप्तता होती है और न ही कर्मफलों की आवश्यकता का आभास होता है। मेरे उक्त प्रकार के कर्म को अर्थात् कर्मो में लिप्तता के अभाव और कर्मो की आवश्यकता के आभास के अभाव को जान जाता है वह मेरे स्वरूप को जानता है और अनेक प्रकार के कर्मो को करके कर्म बंधन में नहीं पड़ता है।

11– इसी प्रकार की उक्त प्रक्रिया से अनेक मुमुक्षु महापुरूषों न कर्म किये हैं इसलिए उन महापुरूषों की तरह से ही अर्थात् अपने पूर्वजों की तरह से ही तुझे भी कर्म करना यथेष्ट है।

12– कर्म तीन प्रकार के होते है जिन्हें 1–कर्म 2–विकर्म तथा 3–अकर्म कहा जाता है। इन तीनों प्रकार के कर्मो का ज्ञान मनुष्य को निश्चित रूप से होना चाहिए तथा उसे कर्म का आचरण करना चाहिए।

13– वस्तुतः कर्म की गति बहुत गहन है अर्थात् कर्म, विकर्म और अकर्म के अन्तर का ज्ञान साधारणतयः नहीं हो पाता। इसलिए अनेक महापुरूष भी कर्म, अकर्म और विकर्म के सम्पादन में कभी–कभी मोहित हो जाते हैं। इस कारण समस्त मनुष्यों को जो अपने हित के आकांक्षी हो उन्हें शास्त्रों के निरन्तर सेवन और महापुरूषों के संग से कर्म अकर्म और विकर्म के स्वरूप का ज्ञान करने हेतु प्रयास करना चाहिए।

14– जिस श्रेष्ठ पुरूष के सम्पूर्ण कर्म कामना और संकल्प के अभाव में होते हैं अर्थात् जो बुद्धिमान पुरूष कामना और संकल्प का सम्पूर्णता से परित्याग कर देता है ऐसे बुद्धिमान पुरूष को ज्ञानीजन भी पंडित कहते हैं।

15– जो कर्म फल की आसक्ति का परित्याग कर देता है और संसार के आश्रय का त्याग करके कर्म करता है और सदैव ही तृप्त रहता है। वह मनुष्य अनेक प्रकार के कर्मो का आचरण करके भी कुछ नहीं करता और अंततः सिद्ध हो जाता है।

16– जो मनुष्य आशारहित है, संसार की किसी वस्तु को एकत्र नहीं करता है तथा जिसने अपने चित्त को जीत लिया है और ऐसी स्थिति में आकर शारीरिक कर्मो का सम्पादन करता है वह पुरूष मोक्ष के योग्य हो जाता है।

17– अपने आप प्राप्त वस्तुओं, परिस्थितियों आदि में संतुष्ट रहने वाला ईर्ष्या, द्वेष, सुख दुःख आदि द्वंदों से विमुक्त हुआ। सिद्धि और असिद्धि में एक समान रहने वाला और समभाव से कर्म करने वाला कर्मो से नहीं बंधता है।

18– जो मनुष्य संसार की आसक्ति से रहित है, मुक्त है और निरन्तर ज्ञान में स्थित है तथा यज्ञ के निमित्त कर्म करने वाला है अर्थात् कर्तव्य कर्मो का सम्पादन करने वाला है उसके समस्त कर्म स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।

19– यज्ञ में जिस पात्र से अर्पण किया जाता है, वह ब्रह्मरूप है, द्रव्य अर्थात् हवन की वस्तुए भी ब्रह्मरूप है, अग्नि भी ब्रह्मरूप है, कर्ता भी ब्रह्मरूप है और अर्पण की क्रिया भी ब्रह्मरूप है। ऐसे ब्रह्म भाव में स्थित कर्ता के लिए प्राप्त करने योग्य परिणाम भी ब्रह्म ही है। अर्थात् उसकी समस्त क्रियाएं ब्रह्म के निमित्त ही होती हैं।

20– संसार में कई महापुरूष देवताओं का उपासना रूपी यज्ञ करते हैं कुछ ब्रह्म रूपी यज्ञ करते है, कुछ इन्द्रियों को संयमरूपी यज्ञ में हवन करते हैं कुछ इन्द्रिय विषयों को इन्द्रिय रूपी यज्ञ में हवन करते हैं और अनेक महापुरूष प्राणायाम के परायण रहते हैं और आत्मसंयम रूप अग्नि में स्वयं को हवन किया करते हैं

तथा अनेक महापुरूष द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय रूपी यज्ञ करने वाले हैं तथा अन्य महात्मा जन्य अपान में प्राण का और प्राण में अपान का हवन करते हैं तथा अन्य महापुरूष अल्पाहार करने वाले हैं । ये समस्त प्रकार के महापुरूष अपने पापों का इस मनुष्य जीवन में ही विनाश कर देते हैं।

20– ऐसे अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन पवित्र वेदों में विस्तार से किया गया है। इस प्रकार जो वेदों में विस्तार से किये गए यज्ञों का विधिपूर्वक सम्पादन करता है वह इस जीवन से मुक्त हो जाता है और जन्म मरण के बंधन से छूट जाता है।

21– यज्ञ से प्राप्त हुए पदार्थ का ग्रहण करना अमृत्व ग्रहण करना है और ऐसे पुरूष परमात्मा को प्राप्त होते हैं और जो पुरूष यज्ञ नहीं करते हैं उनके लिए यह मनुष्य लोक दुःखदायी रहता है और मृत्यु के उपरान्त परलोक भी उनके अनुकूल नहीं होता।

22– द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ उत्कृष्ट है क्योकि समस्त कर्म और द्रव्य ज्ञान में ही समाहित हो जाते हैं। इस ज्ञान को ज्ञानीजनों के समीप जाकर जानना चाहिए। ऐसे महापुरूषों को विनम्रता पूर्वक अभिवादन करके उनकी सेवा करके, ज्ञान का अर्जन किया जा सकता है, परन्तु ज्ञान के प्राप्ति के लिए जो प्रश्न हो वे जिज्ञासु के रूप में होने चाहिए और ऐसे जिज्ञासु के रूप में किये गए प्रश्नों का उचित उत्तर तत्त्व दर्शी पुरूष सहज भाव से ही दे देते हैं।

23– जिस प्रकार अनेक प्रकार का संचित ईधन अग्नि में भस्म हो जाता है वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि में मनुष्य के समस्त सम्पूर्ण संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं और यदि मनुष्य समस्त प्राणियों से अधिक पाप करने वाला भी हो तब भी वह ज्ञानरूप अग्नि में अपने संचित कर्मो को भस्म करके ज्ञानरूपी नौका से इस संसार सागर से पार हो जाता है। इसलिए हमें ज्ञान का आचरण और अवलम्बन करना चाहिए।

24– ज्ञान के समान अन्य कोई वस्तु मनुष्य को पवित्र करने वाली नहीं है। इस जगत में ज्ञान ही मनुष्य के तत्त्वदर्शन का हेतु है उसे स्वयं ही स्वतः जो प्राप्त कर लेता है वह विशिष्ट है और हमें इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिए।

25– जो मूर्ख है, संशय से युक्त है ऐसे पुरूषों का स्वतः ही विनाश हो जाता है। संशय से ग्रस्त मनुष्य इस पृथ्वी लोक में सुख नहीं पाता और वह मृत्यु के पश्चात् भी अनेक प्रकार के दुःखों को भोगता है इसलिए मनुष्य का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह अनेक प्रकार के संशयों का विनाश करने के लिए प्रयत्नशील हो। जितने प्रकार के संशय मनुष्य के अंतःकरण में प्रकट हों उन्हें विनाश करने के लिए मनुष्य को निरन्तर प्रयास करना चाहिए। जिस विधि से संशयों का विनाश हो उस विधि का पालन मनुष्य को करना यथेष्ट है।

26– परमात्मा मनुष्य के हृदय में निवास करता है इसलिए जितने प्रकार के संशय मनुष्य के अंतःकरण में उत्पन्न होते हैं उन सभी के विनाश के लिए हृदय में स्थित परमात्मा से बारम्बार प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसी प्रार्थना करने से हृदय में स्थित परमात्मा हमारे समग्र प्रकार के सांसारिक और आध्यात्मिक संशयों का स्वतः ही विनाश कर देता है।

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग–

ॐ

पंचमोऽध्यायः

1– अर्जुन ने कहा कि हे भगवन! आप कभी ज्ञानयोग की प्रशंसा करते हैं और कभी कर्मयोग को निश्चित कल्याणकारक बताते हैं। इस कारण मुझे संशय उत्पन्न हो रहा है। अतएव जो मेरे लिए कल्याणप्रद मार्ग हो उसका निश्चय कीजिए।

2– श्री भगवान ने कहा कि ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों ही मनुष्य के लिए निश्चित कल्याण करने वाले मार्ग हैं परंतु कर्मयोग की जो प्रक्रिया है वह सहज होने के कारण विशिष्ट है।

3– जो महापुरुष किसी से भी न तो द्वेष करता है और न ही किसी की आकांक्षा करता है अर्थात् राग, द्वेष और अपेक्षा से विमुक्त हो गया है वह संन्यासी कहा जाता है। ऐसा साधक निश्चित ही संसारिक बंधनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है।

4– परमात्मा की अनुभूति के दो विशिष्ट साधनों कर्मयोग और ज्ञानयोग का वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से किया गया है। दोनों में एक भी साधन का सम्यक्रूपेण आचरण करने से मनुष्य मुक्त हो जाता है, क्योंकि दोनों साधनों का एक ही परिणाम है।

5– मनुष्य को जो कर्तापन का भाव रहता है उसका परित्याग करना सहज नहीं है। अत्यंत दुस्तर है परंतु परमात्मा का नित्य निरंतर स्मरण करने से मनुष्य को कर्तापन के भाव से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इसलिए सभी को परमात्मा के नित्य स्मरण का प्रयास करना चाहिए।

6– जिस साधक की मन और बुद्धि शुद्ध है तथा शरीर संयमित है और जो साधक अपने समान सभी को समझता है वह संसार में अनेक कर्मों के करने के पश्चात भी उसमें लिपायमान नहीं होता अर्थात् कर्मों से मुक्त रहता है।

7– इन्द्रियों की जो वृत्तियां हैं वे स्वतः ही कर्मों में बरत रही हैं। अर्थात् व्यवहार कर रही हैं। ऐसा समझकर मैं कुछ नहीं कर रहा हूं। इस भाव का आभास करना चाहिए। इस प्रकार के आभास से मनुष्य कर्तापन के अभिमान से स्वतः मुक्त हो जाता है।

8– जो समस्त कर्मों को परमात्मा में समर्पित कर देता है वह कर्म करके भी जल में कमल के समान लिप्त नहीं होता है और सदा मुक्त ही रहता है।

9– शरीर मन तथा बुद्धि से आसक्ति का परित्याग करके कर्मों का आचरण करना चाहिए। ऐसा करने से अंतःकरण स्वतः ही शुद्ध हो जाता है। इसके प्रतिकूल जो पुरुष संसारिक कामनाओं को दृष्टिगत रखकर फल की प्राप्ति हेतु कर्म करता है वही बंधन का कारण होता है। इस कारण योगी को कर्मफल की आकांक्षा का परित्याग करके कर्मों का संपादन करना चाहिए और ऐसा करने से वह परमशांति को प्राप्त हो जाता है।

10– इस मानव शरीर में नौ द्वार हैं। इस नौ द्वार वाले शरीर में इन्द्रियां तथा मन संयमित है तो कर्मों को करके भी मनुष्य कुछ कर्म नहीं करता और न ही वह कुछ कर्म करवाता है तथा सुखपूर्वक नौ द्वारों वाले शरीर में स्थित रहता है।

11– परमात्मा मनुष्य के द्वारा की जाने वाली अनेक प्रकार की क्रियाओं का तथा क्रियाओं के कर्तापन का और कर्मफलों की रचना करने वाला नहीं है। मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्मों का आचरण कर रहा है। इस कारण जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही परिणाम प्राप्त हो जाता है।

12– परमात्मा न तो किसी के शुभ कर्म को ग्रहण करता है और न ही अशुभ कर्मों को ग्रहण करता है। मनुष्य का ज्ञान अज्ञान से ढका हुआ है। इस कारण वह इस जगत में मोहित हो रहा है।

13– परमात्मा के साक्षात्कार का एक विशेष साधन है कि मनुष्य अज्ञान का आत्मज्ञान से विनाश कर दे। ऐसा करने पर वह परमात्मा प्रकाश के स्वरूप में स्वतः ही प्रगट हो जाता है और साधक को अपनी स्थिति का आभास कराता है। ऐसे साधक को परमात्मा की सत्ता का स्पष्ट आभास होता है।

14– जो साधक एकमात्र परमात्मा का ही आश्रय ग्रहण कर लेते हैं वे मुक्त हो जाते हैं। क्योंकि ऐसे साधकों की मन और बुद्धि परमात्मा में एकाकार हो जाती है और उनकी निरंतर स्थिति परमात्मा में ही रहती है।

15– परमात्मा में एकाकार हुए तथा परमात्मा का आश्रय लेने वाले साधक ब्राह्मण, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल में एक समान भाव रखते हैं जो साधक इस प्रकार के समभाव का उपार्जन कर लेता है वह निश्चित ही मुक्त हो जाता है क्योंकि परमात्मा दोष रहित और समभाव वाला है।

16– जो मनुष्य अपने प्रिय की प्राप्ति में हर्षित नहीं होता और अप्रिय की प्राप्ति में दुखी नहीं होता वह स्थिर बुद्धि मनुष्य परमात्मा को जानता है तथा समभाव में स्थित रहता है।

17– जो साधक बाह्य सुखों से प्रसन्न नहीं होता तथा आसक्तिविहीन रहता है वह स्वयं ही परमात्मा में एकाकार हो जाता है और उसी में वास करता है। ऐसा साधक परमात्मा के विशिष्ट सुख का आभास करता है।

18– जो संसारिक सुख है वह बाह्य सुख है उसका आरम्भ भी है और अंत भी निश्चित है। इसलिए ज्ञानी पुरुष संसारिक सुखों में नहीं रमते तथा बाह्य सुखों की इच्छा से मुक्त हो जाते हैं।

19– जिस मनुष्य ने अपनी मृत्यु के पूर्व ही संसार की समस्त प्रकार की कामनाओं तथा क्रोध के वेग को सहन करने की क्षमता प्राप्त कर ली है वह मनुष्य सुखी है, और जो सांसारिक कामनाओं तथा उनके अवरोध से उत्पन्न क्रोध के वशीभूत रहता है। वह कभी सुखी नहीं रह सकता है। उसको दुख का निश्चित संयोग प्राप्त होता है।

20– जो परमात्मा का ज्ञान रखता है, वह परमात्मा के परायण हो जाता है। क्योंकि परमात्मा के ज्ञान का आभास करने वाला संसार के आभास से मुक्त हो जाता है। ऐसा ही पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

21– जो पूर्ण रूप से संयमित है तथा समग्र मानवमात्र के कल्याण के लिए कर्म करता है वह पापरहित और संशयमुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। क्रोध और कामना से रहित संयमित मन वाले तत्त्वज्ञ मनुष्यों के लिए एकमात्र परमात्मा ही अभीष्ट है।

22– जो मनुष्य बाह्य पदार्थों का परित्यागी है तथा मृत्यु के समय नेत्रों के मध्य प्राणों को स्थापित करके प्राण और अपान की गति को सम कर देता है तथा जो मन इन्द्रियों तथा बुद्धि को नियंत्रित कर लेता है।

ऐसा साधक इच्छा, भय और क्रोध से विगत हो जाता है और निश्चित रूप से जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है।

23– जो साधक श्रीभगवान को समस्त क्रियाओं का, वस्तुओं का, यज्ञ, तप आदि का भोक्ता मानता है वह समस्त प्राणियों का हित चाहने वाला और सबका सुहृद चाहने वाले परमात्मा को तत्त्व से जान जाता है। तत्त्व से जानकर परम्शांति को प्राप्त होता है। इस कारण मनुष्य को यज्ञ, दान, तप आदि कर्मों का भोक्ता उस एकमात्र परमात्मा को ही मानना चाहिए।

कर्मसंन्यासयोग–

ॐ

षष्ठोऽध्यायः

1– श्रीभगवान ने कहा ! कि जो पुरुष किसी के आश्रय में नहीं रहता और शास्त्र संगत कर्मों का आचरण करता है वह पुरुष सन्यासी भी है और योगी भी है। इस कारण मनुष्य को कि संसार आश्रय का त्याग करके शास्त्र संगत कर्मों का आचरण करना चाहिए।

2– अग्नि तथा संसारिक क्रियाओं को त्यागने वाला न तो योगी होता है और न ही संन्यासी होता है। जो समस्त संसारिक संकल्पों को त्याग देता है वह योगी भी होता है और संन्यासी भी हो जाता है।

3– जो पुरुष शास्त्रसम्मत कर्मों का आचरण करता है वह योग पर आरूढ़ हो जाता है। योग पर आरूढ़ होने के लिए शम ही कारण है। इस प्रकार मन को संयमित करने वाला मनुष्य योग पर आरूढ़ हो जाता है। जो साधक इन्द्रियों के भोगों में तथा संसारिक विषयों में आसक्त नहीं होता है। ऐसा सभी प्रकार के संकल्पों का परित्यागी पुरुष ही योग पर आरूढ़ कहा जाता है।

4– मनुष्य को अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करना चाहिए जो मनुष्य अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करते हैं वह स्वयं ही अपने मित्र हैं और जो संसारिक विषयों में लिप्त होकर अपनी मुक्ति के लिए प्रयास नहीं करते हैं वह स्वयं ही अपने शत्रु हैं। इस प्रकार जो संयमित पुरुष है वह अपना स्वयं का मित्र है और जो असंयमित है वह अपना स्वयं का शत्रु है।

5– जो मनुष्य सर्दी, गर्मी, सुख, दुख, मान, अपमान को सम समझ लेता है वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त जो उक्त स्थिति प्राप्त नहीं कर पाते उनको परमात्मा की अनुभूति नहीं हो पाती।

6– जो मनुष्य परमात्मा के स्वरूप को उसकी अनुभूति की प्रक्रिया को जानकर विकार रहित रहता है तथा जितेन्द्रिय है। और मिट्टी तथा सोने को एकसमान दृष्टि से देखता है वह योगी हो जाता है।

7– जो मनुष्य अपने मित्र के प्रति, शत्रु के प्रति, उदासीन आचरण करने वाले के प्रति द्वेषी के प्रति और बंधु–बांधवों के प्रति समभाव रखता है वह सभी को समभाव में देखता हुआ परमात्मा की अनुभूति कर लेता है तथा उत्कृष्ट हो जाता है।

8– परमात्मा के ध्यान हेतु शुद्ध भूमि में मृगछाला, कुश, वस्त्र आदि की आवश्यकता होती है। इस प्रकार सामान्य आसन बनाकर संसार की वस्तुओं को त्याग करके कामना रहित होकर, एकाकी स्थान में चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को मन को परमात्मा में स्थापित करने का प्रयास करे। इस प्रकार के ध्यान में शरीर, गर्दन और सिर एक सीध में रहना श्रेष्ठ माना जाता है। इससे ध्यान की सिद्धि शीघ्र हो जाती है।

9– जिसकी मन और बुद्धि शांत हो गयी है ऐसा भयहीन ब्रह्मचारी पुरुष मन को संयमित करके श्रीभगवान में चित्त को स्थापित करे तथा श्रीभगवान के आश्रय में ही रहे। ऐसा करने से वह संयमित मन वाला साधक परमशांति को प्राप्त कर लेता है तथा उसकी अनुभूति करता है।

10– ध्यानयोगी के लिए संयमित और सात्विक भोजन, समय से निद्रा और जागरण अनिवार्य बताया गया है। यथोचित मात्रा में आहार ग्रहण करने, उचित विहार, कर्मों में उचित चेष्टा करने से साधक पुरुष का योग सिद्ध हो जाता है।

11– जब साधक का चित्त पूर्ण संयमित हो जाता है तो वह संसारिक वस्तुओं की आवश्यकताओं का आभास नहीं करता है और अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। स्वस्वरूप में स्थित हो जाना ही योगी की विशेष स्थिति है।

12– जिस स्थान में वायु में हलचल न हो उस स्थान पर दीपक की ज्योति हिलती–डुलती नहीं है। ऐसी स्थिति एक संयमित साधक के चित्त की होती है। वह अपने चित्त को दीपक की ज्योति के समान शांत कर देता है तथा आत्मस्वरूप में एकाकार हो जाता है।

13– योग के निरंतर सेवन से जब साधक का चित्त उपराम हो जाता है तो वह स्वयं को स्वयं में देखता हुआ निरंतर संतुष्ट रहता है। यह ध्यान योगी की विशेष स्थिति है जो योग के लगातार सेवन से आती है और चित्त की उपरामता को प्राप्त हो जाती है।

14– परमात्मा की अनुभूति का सुख आत्यांतिक सुख है। अर्थात् इससे बढ़कर कोई अन्य सुख नहीं है। अतिन्द्रिय सुख है अर्थात् परमात्मा के सुख का आभास इन्द्रिय विषयों की तरह से नहीं होता और वह सुख सात्त्विक बुद्धि के द्वारा ग्रहण भी होता है। ऐसे आत्यंतिक और अतिन्द्रिय सुख को आभास कर लेने के पश्चात साधक उसका कभी त्याग नहीं करता है तथा अन्य किसी सुख को उसके समतुल्य नहीं समझता है। उसकी स्थिति ऐसे सुख में हो जाने पर वह गंभीर दुख से भी चलायमान नहीं होता है।

15– जब दुखों के संयोग का वियोग हो जावे तो योगी को अपने योग की सिद्धि समझनी चाहिए। इस तथ्य का अभिप्राय यह है कि जब कभी साधक को दुखों का संयोग हो तब उसमें शोक का अभाव रहे। इस तथ्य को परख कर हम अपनी योग सिद्धि के लक्षण को परख सकते हैं।

16– जो कामनाएं संकल्प से उत्पन्न हो जाती हैं उनका पूर्ण परित्याग करें। समग्र इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाएं और मन को संयमित करें तथा धैर्य सहित सभी ओर से अर्थात् संसारिक विषयों से हटाए

और मन को एकमात्र श्रीभगवान में स्थापित करे। ऐसा करता हुआ अन्य कुछ भी चिंतन न करे। तो यही ध्यान की प्रक्रिया है।

17– जब अस्थिर और चंचल मन जिन–जिन विषयों में भ्रमण करता है अर्थात् घूमता है उन–उन विषयों से मन को हटाना चाहिए और एकमात्र परमात्मा में ही लगाना चाहिए। इस प्रकार उक्त क्रिया का निरंतर सेवन करने से ध्यान की सिद्धि हो जाती है और कुछ काल के उपरांत साधक सिद्ध हो जाता है।

18– जो मनुष्य रजोगुण का शमन करके अपने समस्त पापों को नष्ट कर देता है। मन को भली प्रकार संयमित कर लेता है। वह परमात्मा की विशिष्ट सत्ता का स्वतः ही आभास करता है। जब तक मनुष्य के रजोगुण शांत नहीं होते और पापों का क्षय नहीं होता तब तक मनुष्य परमात्मा की सत्ता का आभास कदापि नहीं कर सकता।

19– प्रत्येक मनुष्य को अपना ध्यान संसारिक विषयों से हटाकर परमात्मा में लगाना चाहिए जिससे शीघ्र ही रजोगुण से निवृत्ति हो जाती है और पापों का क्षय हो जाता है इसी को आत्मिक शुद्धि भी कहा जाता है। आत्मिक शुद्धि से परमात्मा की अनुभूति की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है।

20– जो साधक ध्यान योग में संलग्न है वह अपने स्वरूप को समस्त प्राणियों में देखता है। सभी प्राणियों के स्वरूप को स्वयं में देखता है। यह विशेष स्थिति है जो सहजता से प्राप्त नहीं होती है। सभी प्राणियों में और मुझमें उस परमात्मा का अंश ही चैतन्य रूप से विद्यमान है। इस कारण हम सभी प्राणी एक स्वरूप हैं। इस भाव की उत्पत्ति कर लेने वाला साधक विशेष रूप से परमात्मा की अनुभूति कर लेता है।

21– जो साधक सभी में परमात्मा को देखता है और उसकी दृष्टि में एकमात्र परमात्मा की सर्वत्र विराजमान है। इस दृष्टि से युक्त होकर वह परमात्मा को सर्वत्र देखता हुआ परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है। ऐसे साधक का व्यवहार परमात्मा के समान हो जाता है। 22– जो साधक सभी प्राणियों में अपने समान दुख और सुख की प्रतीति का आभास करता है और सभी को अपने समान ही समझता है वह साधक परम योगी हो जाता है। ऐसी स्थिति समस्त जीवों के प्रति सादृश्यता की हो जाती है।

23– मनुष्य का मन चंचल और प्रमथनशील स्वभाव का होता है इसलिए मन को संयमित करना अत्यंत कठिन कार्य है। मन को संयमित करने के लिए अभ्यास और वैराग्य दो ही साधन हैं जो विशिष्ट हैं। इस कारण अभ्यास का और वैराग्य का सेवन मनुष्य को करके अपना मन संयमित कर लेना चाहिए।

24– जो मन को संयमित नहीं कर पाता है उसका विनाश निश्चित है और मनुष्य मन को संयमित कर लेता है उसकी मुक्ति भी निश्चित है। अभ्यास का अर्थ होता है मन को संसारिक विषयों से हटाकर परमात्मा में स्थापित करना। और वैराग्य का अर्थ होता है कि संसारिक भोगों के प्रति घृणा बुद्धि को उत्पन्न कर लेना।

25– जो परमात्मा का चिंतन करता है वह कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है। इस लोक में और परलोक में उसकी कभी भी दुर्गति नहीं होती है। क्योंकि मनुष्य की दुर्गति संसारिक विषयों में फंसकर मनमाने ढंग से अर्थात् स्वेच्छाचारी आचरण करने से होती है।

26– यदि परमात्मा के साक्षात्कार का प्रयास करने वाला साधक परमात्मा का साक्षात्कार करने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसका या तो स्वर्ग लोक को गमन होता है अथवा वह योगियों के घरों में जन्म लेता है। इस प्रकार परमात्मा का साक्षात्कार का प्रयास करने वाला योगभ्रष्ट साधक कभी दुर्गति को

प्राप्त नहीं होगा। जितने प्रकार के संसार में योगी हैं और वे जितने भी प्रकार के योग करते हैं उन सबमें श्रीभगवान को प्रियता से भजने वाला योगी सबसे श्रेष्ठ योगी माना जाता है। इस कारण हम सभी को एकमात्र श्रीभगवान का भजन प्रियतापूर्वक करना चाहिए।

आत्मसंयमयोग–

ॐ

सप्तमोऽध्यायः

1– श्रीभगवान ने कहा कि ! हे अर्जुन मैं तुम्हारे लिए एक बार पुनः विज्ञान सहित उस ज्ञान को कहूंगा जिसे जानकर संसार में कुछ भी जानने को अवशेष नहीं रह जाता।

2– श्रीभगवान ने कहा ! कि इस संसार में हजारों मनुष्यों में से कोई एक मनुष्य हमारी अनुभूति के लिए प्रयास करता है और उन प्रयास करने वाले हजारों मनुष्यों में से कोई एक विशिष्ट साधक हमें तत्त्व से जान पाता है। इस कारण हमारी अनुभूति बहुत दुष्तर है।

3– श्रीभगवान ने कहा कि मेरी दो प्रकार की प्रकृति है जो इस समस्त चराचर जगत को रचती है। एक को अपरा प्रकृति कहा जाता है और दूसरे को परा प्रकृति कहा जाता है। अपरा प्रकृति के आठ भेद हैं। 1– पृथ्वी, 2–जल, 3– अग्नि, 4–वायु, 5–आकाश, 6–मन, 7–बुद्धि तथा 8– अहंकार। परा प्रकृति जीव रूप है जो समस्त प्राणियों को चेतन करती है। अपरा प्रकृति जड़ है। जड़ और चेतन के संयोग से ये समस्त जगत उत्पन्न हुआ है।

4– श्रीभगवान ने कहा! कि इस समस्त ब्रह्मण्ड में मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। मैं ही इस समग्र संसार में उसी तरह पिरोया हुआ हूं जैसे धागे में मणियां पिरोई होती हैं और वह माला का रूप ले लेती हैं। 5– हे अर्जुन! मैं जल में रस हूं। चन्द्रमा और सूर्य में उनका प्रकाश हूं। संपूर्ण वेदों में प्रणव हूं। आकाश में शब्द हूं। पुरुषों में पुरुषत्व हूं। पृथ्वी में गंध, अग्नि में तेज और समस्त प्राणियों में उनका जीवन हूं। तपस्वियों में उनका तप हूं। संपूर्ण प्राणी मात्र का कारण मैं ही हूं।

बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूं। बलवानों का बल अर्थात् सामर्थ्य और धर्म के अनुकूल जो आचरण है वह भी मैं ही हूं। तीनों गुणों अर्थात सत्व, रज, तम से उत्पन्न होने वाले जो भाव हैं उनको मुझसे ही उत्पन्न हुआ जान परंतु वे मुझमें नहीं हैं। 6– तीनों गुण अर्थात् सत्व, रज, तम से उत्पन्न हुए भावों से ये समग्र संसार मोहित हो रहा है। इस कारण वह इन तीनों गुणों से परे मुझ अवनाशी परमात्मा को नहीं जानता।

7– मेरी त्रिगुणीमयी माया बहुत ही दुस्तर है अर्थात् कठिन है। यह माया अलौकिक है इस कारण जो श्रीभगवान का ही निरंतर स्मरण करते हैं वे इस माया के पार हो जाते हैं। परंतु माया के द्वारा जिन मनुष्यों का ज्ञान हर लिया गया है ऐसे आसुरी स्वभाव के मूर्ख मनुष्य मुझको नहीं भजते हैं।

8– श्रीभगवान ने कहा कि मेरे चार प्रकार के भक्त हैं एक संसारिक वस्तु की कामना की पूर्ति चाहने वाला अर्थार्थी भक्त दूसरा संकट के समय मुझे पुकारने वाला आर्त्त भक्त और तीसरा मेरे स्वरूप को जानने की इच्छा करने वाला जिज्ञासु भक्त और चौथा मुझको जान लेने वाला ज्ञानी भक्त।

9– मेरे सभी भक्त तो मुझे प्रिय हैं क्योंकि सभी उदार हैं परंतु मेरे स्वरूप को जान लेने वाला ज्ञानी भक्त मुझको अत्यंत प्रिय है क्योंकि उसने मन, बुद्धि का अर्पण मुझ में ही कर दिया है।

10– मुझको ही सब कुछ मानने वाला एक अत्यंत विलक्षण भक्त है जिसमें यह भाव रहता है कि भगवान वासुदेव ही सब कुछ हैं और इसी भाव से वह मुझे भजता रहता है। ऐसा महात्मा तो अत्यंत दुर्लभ ही है।

11– जिन मनुष्यों का ज्ञान अनेक प्रकार की संसारिक कामनाओं के द्वारा हर लिया गया है वे संसार में अन्य प्रकार के देवी–देवताओं की उपासना करते हैं। वे सकाम भक्त जिस जिस देवी देवता को श्रद्धा से पूजने की इच्छा करते हैं उसकी श्रद्धा को मैं ही देवताओं के प्रति लगा देता हूं।

12– जो मनुष्य जिस देवता को पूजना चाहता है उस देवता से मेरे द्वारा ही विहीत किए गए फल को प्राप्त करता है। परंतु देवताओं की उपासना करने वाले अल्प बुद्धि मनुष्यों का फल नाशवान होता है। देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त हो जाते हैं और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।

13– जो मनुष्य बुद्धिहीन हैं वे श्रीभगवान को सामान्य मनुष्य की तरह मानते हैं तथा वे श्रीभगवान के परम अविनाशी भाव को नहीं जानते हैं। इस कारण श्रीभगवान अपनी योग माया से छिपे रहते हैं और सबके समक्ष प्रकट नहीं होते हैं।

14– श्रीभगवान वर्तमान से पूर्व उत्पन्न हुए। समस्त जीवों को जानते हैं। वर्तमान में स्थित और भविष्य में उत्पन्न होने वाले समस्त जीवों को भी जानते हैं परंतु उन्हें कोई श्रद्धा रहित पुरुष नहीं जानता।

15– श्री भगवान ने कहा हे अर्जुन! मैं त्रिकालज्ञ हूं। इस कारण सृष्टि के आदि से अब तक जितने भी जीव उत्पन्न हुए हैं। मैं उन समस्त जीवों को भली प्रकार जानता हूं परंतु कोई भी श्रद्धा रहित मनुष्य मुझको नहीं जानता है।

16– इस संसार में इच्छा और द्वेष से सुख और दुख रूपी द्वंद उत्पन्न होते हैं तथा इच्छा और द्वेष ही मोहरूपी दोष की उत्पत्ति का कारण है। इच्छा और द्वेष से ही सभी मनुष्य अज्ञानता को प्राप्त हो रहे हैं। इसी कारण वे जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त नहीं हो पाते हैं।

17– जिन महापुरुषों के पापकर्म शास्त्र संगतकर्मों के आचरण से नष्ट हो गए हैं। उनका राग और द्वेष भी नष्ट हो जाता है और उन्हें संसारिक मोह से मुक्ति मिल जाती है। संसारिक मोह से मुक्ति मिलने के कारण ऐसे दृढ़ निश्चय साधक मुझे ही सब प्रकार से भजते हैं अर्थात् मेरी ही सभी प्रकार से पूजा उपासना करते हैं।

18– श्री भगवान ने कहा कि जो मनुष्य बुद्धिमान होता है वह मेरी ही शरण ग्रहण कर लेता है। मेरी शरण ग्रहण करने के उपरांत वह जन्म और मृत्यु के बंधन से छूटने के लिए प्रयत्न करता है और मेरी कृपा से वह जन्म और मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है। जो ऐसा नहीं करते हैं वे पुनः जन्म और पुनः वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मृत्यु रूपी घोर अंधकार में पड़ते रहते हैं।

19– जो साधक मेरी शरण में आ जाते हैं वे ब्रह्म को, अध्यात्म को और अखिल कर्म को समग्रता से जान जाते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें अधिभूत का, अधिदैव का और अधियज्ञ का भी ज्ञान हो जाता है और मृत्यु के समय ऐसे पुरुष मुझ एकमात्र ब्रह्म स्वरूप में ही अपने चित्त को समाहित कर देते हैं और परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

20– श्रीभगवान ने कहा ! कि सभी मनुष्यों को देवी और देवताओं की उपासना करना कर्तव्य कर्म है। परंतु देवी और देवताओं की मुझसे पृथक् कोई सत्ता नहीं है और इसी भाव से देवी और देवताओं की उपासना करनी चाहिए। इस भाव से देवी और देवताओं की उपासना करने वाले पुरुष सभी प्रकार से मेरी ही उपासना करते हैं और इसलिए वे भी जन्म और मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

ज्ञानविज्ञानयोग–

ॐ

अष्टमोऽध्यायः

1– इस ब्रह्माण्ड में जो परम अविनाशी सत्ता है उसे ब्रह्म कहा जाता है तथा जो उसका अंश है उसे जीवात्मा कहा जाता है। उसे ही अध्यात्म में स्वभाव नाम से कहा गया है। समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाला जो कर्म है वह विशिष्ट है। इसलिए इसे ही कर्म कहा जाता है।

2– इस जगत में जो कुछ भी आप देख रहे हैं वह सब उत्पन्न होने वाला और विनाश होने वाला है। अर्थात् सभी पदार्थ विनाशशील धर्म वाले हैं। उन्हें अधिभूत कहा जाता है और प्रजापति ब्रह्मा को अधिदैव नाम से कहा गया है। संसार में जितने भी प्राणी हैं उनके शरीर में मेरी व्याप्तता है। अर्थात् मैं ही समग्र जीवों के शरीर में अधियज्ञ नाम से उपस्थित हूं।

3– इस संसार में मृत्यु निश्चित है। मृत्यु के समय मेरा स्मरण होना एक कठिन कार्य है। परंतु जो मनुष्य मेरा स्मरण करता हुआ इस विनाशशील देह का परित्याग करता है। वह मुझको ही प्राप्त हो जाता है। अंतकाल में अर्थात् मृत्यु के समय में मनुष्य को उन्हीं–उन्हीं भावों का स्मरण होता है जिसका उसने जीवनपर्यंत स्मरण किया है। इसलिए मनुष्य को यह प्रयास करना चाहिए कि प्रत्येक काल में अर्थात् प्रत्येक समय में मेरा ही स्मरण करें। 4– जिस पुरुष ने मन और बुद्धि का समर्पण मेरे स्वरूप, गुण, प्रभाव, सत्ता आदि में कर दिया है और वह संसारिक विषयों को विस्मृत कर चुका है। वह निःसंदेह ही मुझको मृत्यु के उपरांत प्राप्त हो जाता है।

5– हे अर्जुन! परमेश्वर प्रकाश स्वरूप है और उसके ध्यान का अभ्यास संसार के ध्यान के अभ्यास को हटाकर करना चाहिए। जो संसार में न जाने वाले चित्त से परमात्मा का ध्यान करता है। वह निश्चय ही परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

6–परमात्मा के असंख्य गुण हैं। वह सब कुछ जानता है। समस्त जीवों का आदि कारण है। सबको नियंत्रित करने वाला है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतम है। सबको उत्पन्न करता है और उनका पालन पोषण करता है। मन, बुद्धि से परे का विषय है और सूर्य के समान अत्यंत प्रकाश युक्त है तथा अज्ञान से नितांत परे है। ऐसे परमेश्वर का जो मनुष्य ध्यान करता है वह मृत्यु के समय अपने भृकुटि के बीच में प्राणों को आवेशित कर कहीं न जाने वाले मन से स्मरण करके उस अलौकिक परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

7– शरीर में जितने भी द्वार हैं उनको संयमित करके मन को अपने हृदय में रोककर और प्राणों को मस्तक में स्थिर करके योग धारणा में स्थित हो। तथा प्रणव अर्थात ओंकार रूप एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करे। ऐसा करता हुआ जो मृत्यु के समय ब्रह्म का चिंतन करता है। वह भी परम गति को प्राप्त हो जाता है।

8– हे अर्जुन! जो मेरा भक्त है वह मेरे स्वरूप अनन्य चिंतन करे और नित्य निरंतर मेरा स्मरण करे। ऐसे भक्त के लिए मैं सहज रूप में उपलब्ध हो जाता हूं। परमात्मा के साक्षात्कार की यह सबसे सहज प्रक्रिया है। ऐसा करने से इस अशाश्वत संसार से मुक्ति प्राप्त हो जाती है और पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

9– इस ब्रह्माण्ड में असंख्य लोक हैं। अनेक स्वर्गादिक लोक भी हैं। जहां पर दिव्य भोगों की व्यवस्था है। इस समस्त स्वर्गादिक लोकों से ब्रह्मा का लोक सबसे उत्कृष्ट है। अनेक साधक ब्रह्मालोक तक पहुंच जाते हैं परंतु ब्रह्मा के लोक तक जाकर भी वे मुझे न प्राप्त होकर पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।

10– ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चर्तुयुगी काल तक माना जाता है और रात्रि भी एक हजार चर्तुयुगी वाली मानी जाती है। इस प्रकार ब्रह्मा के एक रात और एक दिन को जो महात्माजन जान जाते हैं। वे समय के अभिप्राय को जानते हैं।

11– सृष्टि का संचालन ब्रह्मा के दिन में होता है और ब्रह्मा की रात्रि में प्रलयकाल हो जाता है तब ये सृष्टि शांत हो जाती है। 12– सृष्टि के समापन पर भी वह परम अविनाशी ब्रह्म समाप्त नहीं होता क्योंकि वह ही समस्त सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण है। वह समस्त भूत प्राणियों के नष्ट हो जाने पर भी वह विनिष्ट नहीं होता।

13– जो साधक परमगति को प्राप्त करना चाहते हैं। वे अव्यक्त और परम अविनाशी ब्रह्म का ही सर्वप्रकारेण पूजन करते हैं। ऐसा करने से वह परम अविनाशी ब्रह्म उन्हें अपना परमधाम सहजता से उपलब्ध करा देता है परंतु जो मनुष्य उस परम अविनाशी ब्रह्म की उपासना को छोड़कर विनाशी संसार की उपासना करता है वह इस संसार में ही भ्रमण किया करता है।

14– उस परमात्मा के अंतर्गत समस्त भूत प्राणी व्याप्त हैं और वह परमात्मा समस्त भूत प्राणियों में व्याप्त है अर्थात् समस्त भूत प्राणियों में उसकी ही स्थिति है। इस कारण समस्त भूत प्राणी चैतन्य हैं। ऐसे परमात्मा को प्राप्त करने का सबसे सुगम साधन उसकी अनन्य भक्ति है। संसार में और भी साधन हैं परंतु परमात्मा की अनन्य भक्ति से वह अव्यक्त परमात्मा शीघ्र ही उपलब्ध हो जाता है।

15– इस संसार में दो प्रकार की गतियां हैं जो सृष्टि के आदि से चलती चली आ रही हैं। एक को शुक्ल और दूसरे को कृष्ण कहा जाता है। ये दोनों गतियां विशेष साधकों के लिए अन्य सामान्य पुरुषों के लिए नहीं हैं। जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तो यदि वह कृष्ण गति से अनेक स्वर्गादिक लोकों को जाता है तो पुनः उसकी वापसी होती है और शुक्ल गति से जाता है तो वह परम धाम को प्राप्त हो जाता है और पुनः उसकी वापसी नहीं होती है। इन्हीं दोनों गतियों को उत्तरायण और दक्षिणायन गति कहा जाता है।

16– जो साधक इन दोनों अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन मार्ग को जान जाता है। वह फिर संसारिक विषयों में मोहित नहीं होता और वास्तविकता को जानकर मुक्त होने का प्रयास करता है। श्रीभगवान ने कहा कि मेरी शरण में आकर के और मेरा ही स्मरण करके अनेक साधक लोग सहजता से मुक्त हो जाते हैं।

17– संसार में अनेक प्रकार के शुभ कर्म माने जाते हैं। जैसे वेदों का स्वाध्याय अर्थात् उनका पठन–पाठन भी एक प्रकार का शुभ कर्म है। वैसे ही पवित्र वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञों का उल्लेख है। अनेक महापुरुष वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक महापुरुष शारीरिक, मानसिक और वाचिक तपों का अनुष्ठान सात्त्विक भाव से करते रहते हैं। वैसे ही दान आदि के जो कर्म हैं वे भी निष्काम भाव से किये जाने पर अनेक प्रकार के पुण्यों के हेतु हो जाते हैं। इन समस्त शुभ कर्मों से जो कुछ पुण्य प्राप्त होता है वह परमात्मा के नित्य निरंतर स्मरण से कम ही है। इस कारण मनुष्य को उक्त

कर्मों के साथ परमात्मा का स्मरण नित्य ही करना चाहिए। ऐसा करने से वह सहजता से सनातन परम स्थान को प्राप्त हो जाता है।

18– शुभ कर्मों के आचरण से शुभ फल प्राप्त होता है परंतु जितने प्रकार के भी शुभ फल हैं जिनका अनुष्ठान संसार में संभव हो सकता है यदि किसी कारणवश उन शुभ कर्मों का अनुष्ठान संभव न हो सके तो मनुष्य को एकमात्र श्रीभगवान के नाम का जप और उसके स्वरूप का चिंतन अवश्य करना चाहिए।

अक्षरब्रह्मयोग–

ॐ ॐ

नवमोऽध्यायः

1– श्री भगवान ने कहा हे अर्जुन! तू मुझमें दोषरूपी दृष्टि नहीं रखता है और मेरा भक्त भी है। इस कारण मैं विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान का निरुपण तेरे समक्ष करना चाहता हूं। इस रहस्यप्रद ज्ञान को सुनकर तू इस संसार सागर से सहज भाव से विमुक्त हो जाएगा।

2– यह जो रहस्यप्रद ज्ञान है वह समस्त संसारिक ज्ञानों का सम्राट है और जितने प्रकार के भी रहस्यप्रद ज्ञान हैं उन सबसे अधिक पवित्र और अति उत्तम है। इस ज्ञान को ग्रहण करने के पश्चात् उसके आचरण से प्रत्यक्ष लाभ मनुष्य को मिलता है। यह ज्ञान व्यवहार में लाने हेतु बहुत ही सहज है।

3– जो मनुष्य इस गीता रूपी ज्ञान में श्रद्धा भाव नहीं रखते हैं वे परमात्मा को कदापि प्राप्त नहीं हो सकते और उनका एक ही परिणाम है कि वे संसार रूपी विशाल चक्र में निरंतर घूमा करते हैं तथा उन्हें दुख सहना ही पड़ता है।

4– मैं अव्यक्त हूँ, आकार रहित हूँ, फिर भी इस समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हूं। जितने भी प्राणी इस ब्रह्माण्ड में उपस्थित हैं उनमें मेरी स्थिति है परंतु वस्तुतः मैं उनमें स्थित नहीं हूं। यह एक विशेष तथ्य है कि मुझमें वे भी स्थित नहीं है। यही तो मेरी ऐश्वर्ययुक्त योगरूपी सामर्थ्य है और मैं समस्त प्राणी मात्र को उत्पन्न भी करता हूं। उनका पालन पोषण भी करता हूं परंतु मैं उनमें अपनी स्थिति नहीं रखता।

5– एक वायु समस्त आकाश में विचरती है अर्थात् स्थित रहती है वैसे ही इस ब्रह्माण्ड में जितने भी भूत प्राणी हैं वे सब मेरे में ही स्थिति वाले हैं। इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझना चाहिए क्योंकि जब कल्प का अंत होता है अर्थात् प्रलय होती है। तब सभी भूत प्राणी मेरी प्रकृति में ही समाहित हो जाते हैं और जब कल्प का आरंभ होता है अर्थात् सृष्टि की रचना होती है तो मैं पुनः उन समाहित हुए प्राणी मात्र को रचता हूं।

6– वस्तुतः यह प्राणी मात्र अपने कर्मों के अनुसार अपनी स्थिति को प्राप्त होते हैं। इसमें मेरा कोई प्रयत्न नहीं है। हमारी जो प्रकृतिरूपी शक्ति है वह सब समस्त प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार रचने में विशिष्ट भूमिका निभाती है।

7– हे अर्जुन! मैं जितने भी कर्म करता हूं वे सब आसक्ति से विहीन रहते हैं और उदासीन भाव से होते हैं। जैसे सृष्टि का विशाल कर्म, मैं आसक्ति रहित होकर उदासीनवत् भाव से करता हूं। इसलिए मुझको कभी

भी कर्म बंधन नहीं होता है। जो साधक यह तथ्य जान जाते हैं वे भी संसार की आसक्ति से विहीन होकर उदासीनवत् कर्मों का संपादन करते हैं।

8– मेरी प्रकृति बहुत ही विलक्षण शक्ति वाली है और यह समस्त ब्रह्माण्ड को रचती है। यह रचना मेरी अध्यक्षता में होती है इसलिए मैं इस समस्त ब्रह्माण्ड की रचना का अध्यक्ष हूं। इसी कारण यह जगत पुनः पुनः सृष्टि चक्र में भ्रमण किया करता है।

9– हे अर्जुन! जो मनुष्य मूर्ख है वे मुझे सामान्य मनुष्य की तरह जानते हैं और मैं तो समस्त भूत प्राणियों का महान ईश्वर हूं। मेरे इस ईश्वरीय भाव को न जानकर मुझे सामान्य मनुष्यों की सदृश समझते हैं। ऐसे लोगों की संसार में व्यर्थ आशा रहती है और इन व्यर्थ आशाओं से उनके कर्म भी व्यर्थ होते हैं और उनका ज्ञान भी व्यर्थ होता है। वस्तुतः वे लोग असुर और राक्षस हैं। ऐसे असुरों और राक्षसों को मैं नारकीय योनियों में गिराता हूं।

10– जो मनुष्य दैवी प्रकृति के अधीन होते हैं। वे मुझे निरंतर भजते हैं। दैवी प्रकृति के मनुष्यों के विशिष्ट गुण होते हैं उनमें अहिंसा, सत्य, त्याग, शांति, दया, लज्जा, अभय, दान, दम, शम, यज्ञ, स्वध्याय आदि गुण रहते हैं। ऐसे मनुष्य मुझे सभी भूत प्राणियों का उत्पत्ति कारण मानकर मेरा अनन्यभाव से पूजन स्मरण और वंदन करते हैं। 11– ऐसे भक्त दृढ़ निश्चयी होते हैं, अर्थात् उनके निश्चय को डिगाया जा पाना संभव नहीं है। वे निरंतर मेरे नाम का जप, स्वरूप का ध्यान और गुणों का स्मरण करते हुए मेरे साक्षात्कार हेतु प्रयत्न करते हैं तथा मुझे नमस्कार करते हुए मेरे ही ध्यान में लगे रहते हैं।

12– हे अर्जुन! मैं यह वैदिक यज्ञ हूं, स्वधा हूं, औषधि हूं, मंत्र हूं, घृत हूं, अग्नि हूं और यज्ञ में जो हवन रूपी क्रिया है वह भी मैं ही हूं। इस संसार का उत्पत्ति करने वाला पिता–माता–पितामह हूं और उसका पालन–पोषण करने वाला भी हूं। मैं ही जानने योग्य हूं। वेदों में जो ओंकार है वह भी मैं ही हूं। योगी लोग मुझे ही प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। सभी का स्वामी और साक्षी भाव से सभी को देखने वाला सबका हित चाहने वाला, सबकी उत्पत्ति करने वाला और स्थित रखने वाला मैं ही हूं।

13– संसार में जो वर्षा होती है वह सूर्य के तपने के कारण होती है। इसलिए मैं सूर्य रूप से तपकर पानी बरसाता हूं। मैं ही अमृत हूं। मैं ही मृत्यु हूं। सत्य और असत्य मै ही हूं। वेदों में जो अनेक प्रकार की सकाम उपासनाओं का वर्णन है उसका अनुष्ठान करके जो लोग पापों से मुक्त हो जाते हैं और मुझे यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्गादिक लोकों को भोगते हैं परंतु जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं तो वे पुनः मृत्युलोक अर्थात् पृथ्वी लोक को प्राप्त होते हैं।

वस्तुतः अनेक प्रकार की कामनाएं वैदिक यज्ञों के द्वारा पूरी होती हैं परंतु उनका परिणाम जीवन और मृत्यु ही है।

14– श्री भगवान ने कहा कि जो मेरे प्रेमी भक्त हैं और मुझे नित्य निरंतर स्मरण करने का प्रयास करते हैं और संसार की कामनाओं को तुच्छ समझकर मेरे ही चिंतन में लगे रहते हैं ऐसे प्रेमी भक्तों को संसार में जो कुछ आवश्यकता की वस्तुएं हैं मैं उन्हें सहज भाव से ही दे देता हूं। इसमें उन्हें परिश्रम नहीं करना पड़ता।

15– अन्य प्रकार के कुछ मनुष्य दूसरे देवी देवताओं की उपासना सांसारिक वस्तुओं की कामना से करते हैं। वस्तुतः वे मेरी ही पूजा करते हैं क्योंकि संपूर्ण यज्ञों का भोगने वाला और स्वामी मैं ही हूं। इस कारण वे देवताओं की पूजा करने के कारण पुनः जन्म और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

16– देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त हो जाते हैं। पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं और भूत–प्रेतों को पूजने वाले भूत–प्रेतों को प्राप्त हो जाते हैं, किंतु मेरा पूजन करने वाले मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं और मै उन्हें जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त कर देता हूं।

17– मेरा कोई भी भक्त मुझे प्रेमपूर्वक पुष्प, फल, जल और पत्ते जो भी भेंट करता है उसे मैं अत्यंत स्नेहपूर्वक ग्रहण करता हूं। इस अर्पण करने में प्रेम ही भाव है। इस कारण हे अर्जुन! तुम जो भी कर्म करो, जो भी भोजन करो, जो भी हवन, दान, तप आदि करो वह सब का सब मुझे ही अर्पित कर दो। इससे तू समस्त प्रकार के कर्म बंधनों से और पापों से मुक्त हो जाएगा।

18– जितने भी प्राणी हैं उनमें न तो कोई हमारा प्रिय है और न कोई अप्रिय है परंतु जो मनुष्य मुझको प्रेम से स्मरण करता है। वह मुझे अत्यंत प्रिय हो जाता है और मैं भी उस पुरुष को उसी भाव से भजता हूं जिस भाव से वह मेरा भजन करता है। यदि कोई अत्यंत दुराचारी मनुष्य मेरा अनन्यभाव से भजन करता है तो वह साधु मानने योग्य है और कुछ समय उपरांत वह दुष्कर्मों का परित्याग करके मेरा भक्त हो जाता है और परमशांति को प्राप्त हो जाता है।

19– हे अर्जुन ! चाहे कोई पापयोनि का मनुष्य हो स्त्री हो, वैश्य हो, शूद्र हो या अन्य कोई निकृष्ट मनुष्य हो। यदि वह मेरी शरण में आ जाता है तो मैं उसे मुक्ति दे देता हूँ यह एक निश्चित तथ्य है। इसमें जाति वर्ण आश्रम आदि का बंधन नहीं है।

20– जो पापों से रहित पुण्यकर्मा ब्राह्मण और राजऋषि है वे मुझे बहुत प्रिय हैं और उन्हें मैं निश्चित ही मृत्यु के उपरान्त अपने सान्निध्य में ले लेता हूँ अर्थात् वह परम गति को निश्चित ही प्राप्त हो जाते है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

21– यह संसार दुःखरूप है अर्थात् सुखों से रहित है और अविनाशी भी है इसकी कोई निश्चित स्थिति नहीं है। इस कारण अनित्य है संसार में अधिकांश लोग इस जगत को नित्य मानकर ही संसारिक विषयों में फंसे रहते है। इसलिए हे अर्जुन! तुम इस संसार को अनित्य मानकर मेरा निरन्तर भजन पूजन कर। ऐसा करने से तू अंततः मुझे ही प्राप्त होगा।

22– मनुष्य को चार तथ्यों का सदैव ज्ञान होना चाहिए। उन्हें पहले तो मुझमें मन को लगा देना चाहिए क्योंकि सांसारिक विषयों में मन जाने से ही मनुष्य का पतन होता है और मुझमें यदि मन लग गया तो शास्त्रसम्मत आचरण करता है। इसी प्रकार यदि मनुष्य की संसार के प्रति आसक्ति हो जाती है अर्थात् मनुष्य संसार का भक्त बन जाता है तो भी उसका पतन हो जाता है। इसलिए मनुष्य को सभी प्रकार से मेरा ही भक्त बनना चाहिए।

23– अधिकांश मनुष्य सांसारिक विषयों में लिप्त होकर संसार में ऐश्वर्यवान, धनवान, सम्पत्तिवान, तथा प्रतिभाशाली लोगों की पूजा उपासना करने लगते हैं अर्थात् उन्हें अधिक मान्यता देते है। इससे भी उनका पतन हो जाता है इसलिए सभी प्रकार मेरा पूजन करने वाला हो। संसार में जो पूजनीय पुरूष हैं उनको तो प्रणाम करना शास्त्र संगत कर्म है परन्तु पुनः पुनः मुझे प्रणाम करने से मुक्ति स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

24– संसार के आश्रय में रहने से मनुष्य को अंततः दुःख ही प्राप्त होते हैं। इस कारण संसार के आश्रय का परित्याग करके मेरे आश्रय को ग्रहण कर लेना चाहिए।

राजविद्याराजगुह्ययोग–

ॐ

दशमोऽध्यायः

1– श्री भगवान ने कहा हे अर्जुन ! तू मेरा अत्यंत प्रिय भक्त है। इस कारण मैं तेरे कल्याण की इच्छा सदैव रखता हूँ। तेरा सभी प्रकार से कल्याण हो ऐसी मेरी आकांक्षा रहती है। इसलिए अब मैं पुनः तुझको परम रहस्यप्रद ज्ञान को प्रदान करूंगा।

2– वस्तुतः मेरे उत्पन्न होने को देवता लोग महर्षि भी नहीं जानते है क्योंकि मैने ही सभी देवताओं ओर महर्षियों को उत्पन्न किया है। इस कारण उन्हें भी मेरी उत्पत्ति के विषय का ज्ञान नहीं है।

3–जो कोई मनुष्य मुझको जन्म न लेने वाला और सबका आदि कारण तथा समस्त लोको का महेश्वर जानता है वह पुरूष बुद्धिमान तो हो जाता है और समस्त पापों से स्वतः ही मुक्त हो जाता है इसमें रंचमात्र भी संशय नहीं है। वस्तुतः मैं अजन्मा हूँ और सबकी उत्पत्ति का हेतु हूँ तथा सभी का स्वामी हूँ।

4–सभी मनुष्यों को जो बुद्धि प्राप्त है, जो ज्ञान प्राप्त है जो असम्मोह प्राप्त है वह मेरे द्वारा ही प्रदान किया गया है। अनेक साधु पुरूषों के अन्दर क्षमा, सत्य और इन्द्रियों का दमन करने की शक्ति, मन को संयमित करने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है। वह सामर्थ्य मेरे द्वारा ही उनको प्रदान की जाती है।

5– इस संसार की उत्पत्ति और उसका विनाश मनुष्यों में सुख दुःख, अहिंसा, समभाव, तुष्टि, दान, तप, यश और साथ में अयश अर्थात् अपकीर्ति जैसे भाव मेरे द्वारा ही उत्पन्न कर दिए जाते हैं। इस प्रकार मनुष्यों में जितने भी प्रकार के पृथक्–पृथक् भावों को तुम देखते हो उनका उपार्जन मेरे द्वारा ही किया जाता है। वस्तुतः किसी मनुष्य के पास न तो कोई बुद्धि है, न ज्ञान, क्षमा, सत्य, शम, दम, अहिंसा आदि शक्तियां हैं। यह सब शक्तियां मेरे द्वारा ही बुद्धिमान पुरूषों को प्रदान कर दी जाती है।

6– सृष्टि का जब आरम्भ हुआ तो पहले सनकादिक ऋषियों का, सात महर्षियों का 14 मनुओं का उद्भव हुआ। इन सभी विशिष्ट पुरूषों की उत्पत्ति मेरे मन के द्वारा हुई अर्थात् मैने मन से विचार किया कि उक्त महापुरूष उत्पन्न हो तो वे उत्पन्न हो गए और सनकादिक ऋषियों, सात महार्षियों तथा 14 मनुओं की प्रजा ही समस्त संसार में व्याप्त हो रही है।

7– इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति के तत्त्व को और मेरे इस विशिष्ट विभूति को तथा योग सामर्थ्य को जो मनुष्य जान जाता है वह मेरा भक्त हो जाता है और मुझमें किसी प्रकार भी कोई संदेह नहीं करता।

8– यह तथ्य स्पष्ट रूप से समझना चाहिए कि मैने ही इस समग्र ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की है और समस्त प्राणी मात्र मेरे में ही प्रवर्तित हो रहे हैं। ऐसा जानकर जो महानुभाव तथा बुद्धिमान पुरूष मेरा भजन करते हैं वे निश्चित ही मुक्त हो जाते हैं।

9– बहुत से महापुरूष मेरे में ही चित्त को समर्पित कर देते हैं मेरे में ही प्राणों का अर्पण कर देते हैं और मेरे गुण, स्वरूप, प्रभाव का नित्य निरन्तर संवाद करते रहते हैं। इसमें उन्हें पूर्ण संतुष्टि का आभास होता है यह सब करना मेरे में ही रमण करना कहा जाता है।

ऐसे नित्य और सतत मेरे में संलग्न हुए श्रद्धायुक्त भक्तों को मैं वह बुद्धि दे देता हूँ जिससे वे मेरी अनुभूति कर लेते हैं। वस्तुतः बुद्धि मेरी अनुभूति नहीं कर सकती। परन्तु जब मैं बुद्धि में वह प्रकाश उत्पन्न कर देता हूं तो जड़ बुद्धि ही मेरी अनुभूति करती है।

10– ऐसे बुद्धिमान पुरूषों पर मैं अनुकम्पा करता हूँ और उनके अंतःकरण में उपस्थित होकर उनके अज्ञानरूपी अंधकार को अपने प्रकाश से प्रकाशित कर देता हूँ जिससे उनका अज्ञान स्वतः ही नष्ट हो जाता है।

11– अर्जुन ने कहा कि हे भगवन ! आप तो परमब्रह्म है परमधाम हैं और परम पवित्र हैं। ऐसा सभी शाश्वत अलौकिक ऋषिगण आपको कहते हैं। आप वस्तुतः समस्त देवताओं के भी आदि कारण जन्म से रहित और सर्वत्र व्याप्त है। ऐसा भी देवर्षि नारद, असित और देवल तथा महर्षि व्यास भी कहते है और ऐसा मैं भी मानता हूँ।

12– हे केशव ! आपने अब तक मुझे जो भी ज्ञान प्रदान किया है उस कथन किये गए समस्त ज्ञान को मैं वैसा ही मानता हूँ जैसा आपके द्वारा कहा गया है। यथार्थ तथ्य तो यह है कि आपके स्वरूप को असुरगण और देवगण भी नहीं जान सकते।

13– आप समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले है। समस्त प्राणियों के स्वामी हैं। देवताओं के भी स्वामी हैं। इस जगत के स्वामी हैं। इस कारण हे पुरूषोत्तम ! आप स्वयं ही स्वयं को जानने में समर्थ हैं। इसलिए आप अपनी अलौकिक विभूतियों को समग्रता से वर्णित करने की सामर्थ्य रखते हैं। जिन विभूतियों से आपने ब्रह्माण्ड में स्थित अनेक लोकों को व्याप्त कर लिया है उन विभूतियों को मैं जानना चाहता हूँ और उनका चिंतन करना चाहता हूँ। मेरे इस कथन का यह उद्देश्य है कि आपको कैसे कैसे भावों से मनुष्य चिंतन कर सकता है?

14– अर्जुन ने कहा हे जनार्दन ! अपने योग की सामर्थ्य को, अपनी समग्र विभूतियों को विस्तृत रूप से वर्णित करने की कृपा कीजिए क्योंकि आपके द्वारा अमृत के स्वरूप को वर्णित किये गए वचनों को सुनकर मेरी संतुष्टि अब तक नहीं हुई है तथा नित्य नवीन जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है।

15– श्री भगवान ने कहा हे कुल श्रेष्ठ! मेरी अलौकिक विभूतियां तो अनन्त हैं उनका समग्रता से वर्णन किया जा पाना असंभव है। इस कारण मैं प्रमुख–प्रमुख विभूतियों को संक्षेप में आपके लिए वर्णित कर रहा हूँ। इस वर्णन का आप अवलोकन कीजिए। प्रमुख तथ्य यह है कि संसार में जो कुछ भी विशिष्ट प्रतीत हो उसे मेरा ही स्वरूप समझना चाहिए।

16– ऐसा कहकर श्री भगवान ने अपनी विभूतियों का संक्षेप से वर्णन करना आरम्भ किया। श्री भगवान ने कहा कि जितने भी प्राणी हैं उन सबके हृदय में आत्मा रूप से रहता हूँ और सभी प्राणीमात्र का उत्पत्ति

मध्य और अंत भी मैं हूँ। मैं अदिति के पुत्रों में विष्णु, ज्योतियों में सूर्य और मरूतो में उनका तेज और नक्षत्रों में उनका स्वामी चन्द्रमा हूँ।

17– वेदों में सामवेद विशिष्ट है इसलिए मैं वेदों में सामवेद, देवताओं में उनका स्वामी इन्द्र हूँ। इन्द्रियों में उनका स्वामी मन हूँ और प्राणियों में चैतन्यता हूँ। रूद्रों में भगवान शंकर हूँ यक्ष और राक्षसों में कुबेर हूँ। वसुओं में अग्नि हूँ और ऊँचे शिखर वाले पर्वतों में सुमेर पर्वत हूँ।

18– मुझे देवताओं का गुरू बृहस्पति तथा सेनापतियों में स्कन्ध, जलाशयों में समुद्र, महार्षियों में भृगु, शब्दों में ओंकार, समस्त प्रकार के यज्ञों में जपयज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ जानना चाहिए। सभी प्रकार के वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देव ऋषियों में नारद, गंर्धवों में चित्ररथ तथा सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।

19– घोड़ो में उच्चैःश्रवा नाम का घोड़ा, हाथियों में ऐरावत हाथी, मनुष्यों में राजा, शस्त्रों में वज्र, गायों में कामधेनु गाय और शास्त्र सम्यक विधि समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का कारण कामदेव मैं ही हूँ। सर्पो में वासुपि सर्प, नागों में शेषनाग, जलचरों में वरूण, पितरों में अर्यमा, तथा संयमित करने वालों में यमराज मुझे ही जानना चाहिए। असुर गणों में प्रहलाद, काल की संगणना में समय, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरूण हूँ।

20– पवित्र करने वालों में पवित्र वायु, शस्त्र धारण करने वाले में भगवान श्री राम, मछलियों में मगर और नदियों में गंगा जी हूँ। समग्र सृष्टियों का आदि मध्य और अंत मैं ही हूँ। सभी प्रकार की विद्याओं में अध्यात्म विद्या अर्थात ब्रह्म की अनुभूति की प्रक्रिया रूपी ज्ञान और विवाद करने वालों में निर्णय किये जाने वाला तत्त्व मैं ही हूँ अक्षरों में आकार हूँ समासों में द्वंद्व समास, अक्षय काल का भी काल हूँ। विराट स्वरूप होकर मैं सबका पालन पोषण करता हूँ।

21– सबको विनिष्ट करने वाली मृत्यु और उत्पन्न होने वालों का कारण उद्भव मैं ही हूँ। स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा मैं ही हूँ। गाकर कही जाने वाले श्रुतियों में बृहत्साम, छंदों में गायत्री छंद, महीनों में माघ का महीना और ऋतुओं में बसंत मैं ही हूँ। छल वालों में जुंआ, तेजस्वी पुरूषों में उनका तेज और विजय के आकांक्षी पुरूषों में उनकी विजय हूँ। निश्चयात्मक प्रवृत्ति वाले लोगों में विनिश्चय और सात्विक महानुभावों का सत्व भाव मैं ही हूँ। वृष्णिवंशियों में वासुदेव, पाण्डवों में धनन्जय, मुनियों में महर्षि वेदव्यास, कवियों में शुक्राचार्य, दमन करने वालों में दंड, विजय की आकांक्षा वालों में नीति, और गोपनीय भावों में मौन तथा ज्ञानवानों का ज्ञान मैं ही हूँ।

22– श्री भगवान ने कहा हे अर्जुन ! समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का जो बीज है वह भी मैं हूँ चर और अचर में ऐसा कोई भूतप्राणी नहीं है जो मेरे बिना हो। इस प्रकार मेरी अलौकिक विभूतियों का अंत मिलना कठिन है। मैने जो उपरोक्त प्रकार से अपनी विभूतियों का उल्लेख किया है वह केवल संक्षेप से ही किया है। यथार्थ तथ्य यह है कि संसार में जो भी ऐश्वर्य से युक्त तेज से युक्त तथा सामर्थ्य से युक्त जो भी वस्तु है उसे तू मेरा ही अंश समझे।

23– हे अर्जुन! बहुत से ज्ञान को जानने का तुम्हारा अभिप्राय नहीं है क्योंकि मेरी अलौकिक विभूतियों का अंत पा पाना असंभव है। इस समस्त ब्रह्माण्ड को मैने अपने एक अंश से धारण कर रखा है। यह विशिष्ट बात है। जो कुछ भी तुम संसार में देख रहे हो और जो कुछ भी अन्य संसार में नहीं देख पा रहे हो तथा जिसकी तुमको अनुभूति नहीं हो पा रही है और तुम्हारी कल्पना शक्ति से तुम्हारे ज्ञान से जो कुछ भी बाहर है वह सबका सब मेरे ही एक अंश से प्रकट हुआ समझो।

विभूतियोग–

ॐ

एकादशोऽध्यायः

1– अर्जुन ने कहा कि हे भगवन! आपने कृपा करके इस परम रहस्यप्रद अध्यात्मिक ज्ञान को मेरे समक्ष प्रकट किया है जिससे मेरा समस्त मोह स्वतः ही विगत हो गया है। वस्तुतः आपके द्वारा प्रस्तुत ज्ञान मनुष्य के अज्ञान को नष्ट करने वाला है। हे कमल नेत्र! आपके द्वारा समस्त प्राणियों का उद्भव और उनका विनाश विस्तृत रूप से मेरे द्वारा सुना गया तथा आपने अपने अविनाशी माहात्म्य को भी विस्तार से मेरे प्रति कहा है।

2– हे परम ईश्वर ! आप अपने को जैसा कहते है वैसा वैसा मैं आपको मानता हूँ हे पुरूषोत्त्म ! मैं आपके ईश्वरीय स्वरूप को देखने की इच्छा कर रहा हूँ। हेप्रभु! यदि आपका वह ईश्वरीय स्वरूप मेरे द्वारा देखा जाना संभव हो तो हे योगेश्वर! आप अपने उस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइए।

3– श्री भगवान ने कहा अब तुम मेरे सैकड़ों और हजारों नाना विधि के नाना वर्ण और अनेक आकृतियों वाले दिव्य रूपों को देखों। हे अर्जुन! आदित्यों को, आठ वसुओ को, ग्यारह रूद्रों को, दो अश्विनी कुमारों को और मरूदगणों को देखो। और इससे पहले अनेक रहस्यप्रद रूपों को जिन्हें तुमने नहीं देखा है उन्हें भी देखो।

4– यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरे में स्थित है और चर तथा अचर सहित इस समग्र ब्रह्माण्ड को मेरे एक शरीर में स्थित हुआ देख तथा अन्य जो कुछ भी इच्छा करता है उसको भी देख परन्तु तुम्हारे पास जो नेत्र हैं उनमें मेरे इस ईश्वरीय स्वरूप को देखने की सामर्थ्य नहीं है। इस कारण मैं तुझको दिव्य नेत्र प्रदान करता हूँ जिससे तू मेरे ईश्वरीय स्वरूप को देख सकेगा।

5– संजय ने कहा हे राजन! भगवान श्री कृष्ण ने ऐसा कहकर अपना दिव्य स्वरूप प्रकट कर दिया। उस दिव्य स्वरूप में अनेकानेक मुख, नेत्र थे तथा अनेक अद्भुत रूप वाले अलौकिक आभूषणों से वह रूप युक्त था। अनेक अलौकिक शस्त्रों को हाथ में धारण किये हुए और वस्त्रों को पहने हुए तथा अलौकिक गंध का सम्पूर्ण विराट स्वरूप में लेपन किये हुए सभी प्रकार के दिशाओं से संयुक्त अनन्त सभी ओर से मुख किये हुए उस विराट स्वरूप का प्रकटीकरण हुआ।

6– विराट स्वरूप के प्रकट होने से ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे हजारों सूर्य एक साथ ही प्रकट हो गए हो परन्तु हजारों सूर्यो के एक साथ प्रकट होने पर भी उस विराट स्वरूप के प्रकाश के समान प्रकाश कदाचित

ही हो। अर्जुन ने पृथक्–पृथक् प्रकार से बंटे हुए सम्पूर्ण संसार को श्री भगवान में एक स्थान पर स्थित हुए देखा। ऐसा देखकर उसको रोमांच हो गया तथ वह श्री भगवान को प्रणाम करके यह वचन बोला।

7– अर्जुन ने कहा हे भगवन्! मैं आपके शरीर में ही सम्पूर्ण देवताओं को अनेक भूतों के समुदायों को कमल पर आसीन भगवान ब्रह्मा को, भगवान शंकर को सम्पूर्ण ऋषियों को और अलौकिक अनेक सर्पो को देख रहा हूँ। हे भगवन! आपकी तो अनेक भुजाएं है अनेक पेट हैं अनेक मुख हैं और अनेक नेत्र हैं तथा सभी ओर से आपके अनन्त रूप हैं। हे विश्व! के स्वरूप आपका न तो अन्त है न मध्य है और न आदि है। हे भगवन! मैं आपको मुकुट गदा, चक्र से युक्त प्रकाश की तेज राशि के समान प्रज्जवलित प्रकाश स्वरूप और अत्यंत कठिनाई से दर्शन किये जाने योग्य सभी प्रकार से देख रहा हूँ।

8– हे भगवन ! इस जगत में आप परम अविनाशी है सम्पूर्ण संसार के एक मात्र आशय है। धर्म के रक्षक है। अविनाशी सनातन पुरूष और जानने योग्य भी आप ही है। मैं आपको आदि मध्य और अन्त से रहित अनन्त वीर्य वाले अनेक भुजाओं वाले चन्द्रमा और सूर्य के समान नेत्रों वाले प्रज्जवलित अग्नि के समान मुख वाले आपके तेज से इस जगत को तृप्त करते हुए देख रहा हूँ।

9– हे भगवन ! स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का जो आकाश है सभी दिशाऐं हैं वह आपसे ही व्याप्त हैं। आपके इस अलौकिक और उग्र रूप को देखकर तीनों लोक व्यथित हो रहे हैं। देवताओं के समूह के समूह आपमें प्रविष्टि हो रहे हैं। अनेक देवता लोग भयभीत होकर हाथों में जोड़कर आपके नाम का जप कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों का संघ सभी का कल्याण हो ऐसे वचन कहकर आपकी स्तुति कर रहे हैं।

10– ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, सांध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनी कुमार तथा मरूद्गण और पितृगण, यक्ष राक्षस, गंर्धव, सिद्धों का समुदाय वे सबके सब आपको आश्चर्यजनक रूप से देख रहे हैं। हे भगवन! आपके बहुत मुख, नेत्र, हाथ, जंघा, पैर और उदर हैं। आपकी दांढ़े बहुत भयंकर हैं। जिसको देखकर सभी लोग व्यथित हो रहे हैं। आकाश को छूने वाले आपके अलौकिक अनेकानेक वर्णों से संयुक्त फैले हुए मुख और विशाल प्रज्जवलित नेत्रों को देखकर मैं भयभीत हो रहा हूँ। धैर्य और शान्ति मुझे नहीं प्राप्त हो पा रही है आपकी भयानक दाढ़े प्रलयकाल की अग्नि के समान जल रही है। आपके अनेक मुखों को देखकर दिशाओं का भ्रम भी हो रहा है। इसलिए मुझे सुख की प्राप्ति नहीं हो रही है।

11– हे देवेश! हे जगन्निवास ! यह सभी कौरव तथा उनके साथ जो राजा गण है वे सबके सब पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कर्ण और हमारे पक्ष में भी जो योद्धागण है वे सभी आपके भयानक मुखों में तेजी से प्रवेश कर रहे हैं तथा कई योद्धागण अपने खंडित मस्तक के सहित आपके दांतों के मध्य संलग्न दिख रहे हैं। इस प्रकार नदियों के बहुत से जल का प्रवाह समुद्र की ओर स्वतः ही दौड़कर प्रवेश करता है वैसे ही यह सबके सब योद्धागण आपके विशाल मुखों में स्वयं ही प्रवेश कर रहे हैं।

12– जिस प्रकार एक पतंगा स्वयं विनिष्ट होने के लिए जलती हुई अग्नि में अत्यंत गति से प्रवेश करता है वैसे ही यह सभी योद्धागण स्वयं के विनाश के लिए आपके मुखों में अत्यंत गति से प्रवेश पा रहे हैं। सम्पूर्ण लोकों को जलते हुए मुखों द्वारा अपना ग्रास बना रहे हैं तथा उन्हें सभी दिशाओं से पुनः पुनः चाट भी रहे हैं। आपका भयंकर प्रकाश इस समग्र जगत को तेज के द्वारा तप्त कर रहा है।

13– अर्जुन ने कहा हे भगवन ! आप मुझे यह बताये कि इस भयानक रूप वाले आप कौन है? हे समग्र देवताओं में श्रेष्ठ आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो। आप प्रसन्न हो जाइए हे आदि !पुरूष मैं आपके स्वरूप को जानने की इच्छा रखता हूँ तथा आपकी प्रवृत्ति से भी अनभिज्ञ हूँ।

14– श्री भगवान ने कहा मैं इस समय सभी लोको का विनाश करने को प्रवृत्त हुआ काल हूँ तथा सभी लोकों को विनाश करने के लिए उद्वत हुआ हूँ। आपके विरूद्ध जो भी योद्धा लोग हैं वह सभी भविष्य में नहीं रहेंगे अर्थात् विनिष्ट हो जायेंगे इसलिए तू युद्ध के लिए खड़ा हो जा और शत्रुओं को जीतकर एक समृद्ध राज्य को भोग। यह तो सभी प्रतिपक्षी लोग मेरे द्वारा ही मार दिए गए हैं। इसलिए हे सभ्यसांची! तू केवल निमित्त मात्र हो जा।

15– प्रतिपक्षियों में जो आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, जयद्रथ, कर्ण और भी जितने योद्धागण है वे सब तो मेरे द्वारा ही मारे जा चुके है। इसलिए तू भयभीत न हो। इस युद्ध में अपने शत्रुओं को निश्चित ही जीत सकेगा। इस कारण युद्ध कर।

16– संजय बोले कि हे राजन! श्री भगवान के इन वचनों को सुनकर अर्जुन ने अपने दोनों हाथ जोड़े और कांपता हुआ उन्हें नमस्कार करके अत्यंत भय से प्रणाम किया तथा श्री भगवान से यह कहा।

17– हे हृषिकेश! यह समग्र संसार आपके स्वरूप गुण प्रभाव से व्यथा को प्राप्त हो रहा है तथा सभी राक्षस भय से युक्त हो करके सभी दिशाओं में स्वतः ही पलायन कर रहे हैं। परन्तु सिद्धों का समुदाय आपको प्रणाम कर रहा है। हे भगवन! आप तो प्रजापति ब्रह्मा के भी उत्पत्तिकर्ता है। सबसे श्रेष्ठ हैं।

इस कारण हम आपको नमस्कार कर रहे हैं। हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत और असत से भी परे है वह परम अविनाशी परमात्मा आप ही हैं।

18– आप तो देवों के भी आदि कारण सनातन पुरूष जगत के परम निधान जानने वाले तथा जानने योग्य परमाश्रय है। हे अनन्त! रूप आप से ही यह समस्त जगत परिपूर्ण है। हे भगवन! आप वायु, यम, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा और प्रजापति ब्रह्मा के भी पिता है। इस कारण आपको हजारों बार पुनः पुनः नमस्कार कर रहा हूँ।

19– हे अनन्त वीर्य आपको आगे से पीछे से और सभी ओर से मेरा प्रणाम स्वीकार हो। आप अनन्त पराक्रमी हैं तथा सभी संसार में व्याप्त हैं तथा सभी के स्वरूप में हैं। आपके इस प्रभाव को न जानते हुए मेरे द्वारा सखा रूप में प्रेम से अथवा प्रमाद से कुछ अनुचित कहा गया है वह भी क्षमा करें मैने आपको विहार शैया आसन, भोजन में अकेले अथवा सभी सखाओं के समक्ष भी यदि कभी अपमानित किया हो तो उसे भी आप क्षमा करें।

20– हे भगवन आप इस चराचर विश्व के पिता सबसे श्रेष्ठ पूज्य और अप्रतिम प्रभाव वाले हैं। तीनों लोकों में आपके सदृश अन्य कोई भी नहीं है तो आपसे बड़ा होने का प्रश्न ही कहा है इस कारण मैं आपके चरणों में भली प्रकार प्रणाम करके आपकी स्तुति करता हूँ और तो और आपके प्रसन्न होने हेतु प्रार्थना करता हूँ। हे देव! जिस प्रकार पुत्र के अपराधों को पिता क्षमा कर देता है। सखा के अपराधों को सखा क्षमा कर देता है पत्नी के अपराधों को पति क्षमा कर देता है वैसे ही मेरे अपराधों को आप क्षमा करें।

21– आप के इस विराट स्वरूप को मैने कभी पहले नहीं देखा है इस कारण इस रूप को देखकर मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ तथा भय से भी व्यथित हो रहा हूँ। इसलिए मुझे अपने उस देव स्वरूप को दिखाने की कृपा कीजिए। हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हो जाइए।

22– मेरी आकांक्षा है कि मैं आपको मस्तक पर मुकुट पहने हुए गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखूं। इस कारण उस चतुर्भुज स्वरूप में प्रकट होने की कृपा कीजिए। क्योंकि मैं आपके चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ।

23– श्री भगवान ने कहा कि हे अर्जुन! आपको प्रसन्न होकर मैंने अपनी ईश्वरीय शक्ति से इस परम तेजस्वी स्वरूप का दर्शन कराया है। यह अनन्त है विश्व स्वरूप है जो आपके द्वारा देखा गया है इस स्वरूप का दर्शन आज से पूर्व किसी ने अब तक नहीं किया है।

इस जगत में मनुष्य चाहे वेदों का अध्ययन करें दान करें, तप रूपी क्रियाओं का अनुष्ठान करें तथा अनेक प्रकार के शुभ कर्म करे परन्तु वह मेरे इस विराट स्वरूप को नहीं देख सकता है।

24– हे अर्जुन ! मेरे इस विराट स्वरूप के भयंकर रूप को देखकर तू व्यथित न हो और तुझमें मूढ़ता का भाव भी न आये। तू भय से विगत हो करके मुझसे स्नेह कर और मैं तुझे पुनः शंख चक्र, गदा तथा कमल से युक्त रूप को दिखाना चाहूँगा।

25– संजय ने कहा कि इस प्रकार श्री भगवान ने अर्जुन को चतुर्भुज रूप दिखाने की प्रतिज्ञा की और उस विराट स्वरूप के दर्शन से भयभीत अर्जुन को धैर्य बंधाया।

26– अर्जुन ने कहा हे भगवन! मैं आपके इस शान्त चतुर्भुज रूप को देखकर स्थिर भाव हो गया हूँ। क्योंकि यह रूप सौम्य स्वरूप है तथा इसे देखकर मैं अपनी पूर्व वाली प्रकृति को प्राप्त हो गया हूँ।

27– श्री भगवान ने कहा हे अर्जुन! जिस स्वरूप का दर्शन आप कर रहे है उसका दर्शन अत्यंत ही कठिनता से होता है। अनेक देवता गण भी मेरे इस स्वरूप के दर्शन की इच्छा रखते है। जैसा यह सौम्य चतुर्भुज स्वरूप आपने देखा है इसको भी यज्ञ दान तप तथा वेदों के अध्ययन से नहीं देखा जा सकता।

28– हे अर्जुन ! मेरे इस चतुर्भुज रूप को देखने के लिए जो मेरा भक्त है वही सक्षम है। इसलिए तुझे मेरा भक्त होना चाहिए। हे अर्जुन मेरे लिए समस्त कर्मो को कर मेरे आश्रय में रह मेरा भक्त हो और समस्त प्रकार की सांसारिक आसक्तियों से विगत हो जा तथा सम्पूर्ण प्राणियों से वैर भाव का परित्याग कर दें तथा मुझसे स्नेह कर मुझको प्राप्त कर लें।

विश्वरूपदर्शनयोग–

ॐ

द्वादशोऽध्यायः

1– अर्जुन ने कहा कि हे भगवन् !आपने मुझे अपने इस चतुर्भुज रूप का दर्शन कराया है यह स्वरूप तो देवताओं के द्वारा भी देखा जाना कठिन है। परन्तु जो लोग आपके इस स्वरूप की पूजा उपासना, ध्यान आदि करते हैं वे श्रेष्ठ समझे जाते है अथवा जो आपके परम अविनाशी अव्यक्त स्वरूप की पूजा उपासना करते हैं वे उत्कृष्ट है। कृपया मुझे यह बताइए कि उक्त दोनों स्वरूपों के उपासकों में कौन सा उपासक श्रेष्ठ माना जाता है।

2– श्री भगवान ने कहा जिस स्वरूप का दर्शन आपने किया उस चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन किया जाना वस्तुतः बहुत कठिन है और मेरे बहुत से भक्त जन इसी स्वरूप का निरन्तर ध्यान करते हैं और मन को उसमें आवेशित करके नित्य युक्त रह कर श्रद्धा भाव से मेरी पूजा उपासना करते हैं वे तो सभी उपासकों से श्रेष्ठ हैं। ऐसा स्पष्ट रूप से जानना चाहिए।

3– इसके अतिरिक्त जो उपासक अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से निकाल कर और अच्छी प्रकार से उनको संयमित करके मेरे अचिंत्यस्वरूप का ध्यान करते है तथा मुझे सर्वव्यापी कुटस्थ, ध्रुव, अचल, अव्यक्त, अक्षर, आदि मानते हैं तथा मेरे अव्यक्त स्वरूप का ध्यान करने का प्रयास करते हैं ऐसे महानुभाव सभी प्राणियों के कल्याण के लिए विशेष कार्य करने वाले हैं। यह उपासक भी मुझे अंततः उपासना की पूर्णतः में प्राप्त हो जाते है उसमें कोई संदेह नहीं हैं।

4– मेरे अव्यक्त स्वरूप का ध्यान और उसे साक्षात् करना विशेष क्लेश का काम है। अर्थात् यह बहुत ही परिश्रम से सिद्ध होने वाला है क्योंकि मनुष्यों में अपने शरीर का अहंकार विशेष रहता है। चूंकि अहंकार बुद्धि से भी सूक्ष्म तत्त्व है। इस कारण ये शीघ्रता से शरीर से समाप्त नहीं होता और अव्यक्त स्वरूप का उपासक इस कारण कठिनता से मेरे स्वरूप का साक्षात्कार कर पाता है।

5– जो भक्त मुझमें अपने सभी भावों को अपने समस्त कर्मो को मुझमें समर्पित कर देते है तथा संसार के विषयों को त्याग कर मेरे चतुर्भुज स्वरूप का निरन्तर स्मरण करते रहते हैं अर्थात् उसकी उपासना में व्यस्त रहते है मैं ऐसे भक्तों का और मुझे चित्त लगाने वाले स्नेही जनों का इस संसार सागर से शीघ्र ही उद्धार कर देता हूँ। इसलिए मेरे चतुर्भुज स्वरूप का स्मरण ध्यान चिंतन विशिष्ट है।

6– हे अर्जुन! मेरे स्वरूप में अपने मन को स्थापित करो तथा बुद्धि में मेरे स्वरूप का विनिश्चय कर लो। ऐसा करने से मन और बुद्धि के जड़ होने पर भी तू मेरे में ही वास करेगा। इसमें कोई भी संशय तुझे नहीं होना चाहिए। वैसे मन और बुद्धि से परमात्मा साक्षात्कार नहीं किया जा सकता परन्तु जब मन और बुद्धि संसारिक विषयों के विचारण और विनिश्चय से पृथक् होकर मेरे स्वरूप के विचारण और विनिश्चय में संलग्न हो जाती है तब वही मन बुद्धि मेरी स्थिति का आभास कर लेती है और मेरा साक्षात्कार प्राप्त करती है।

7– यदि तुझको यह कार्य कठिन लग रहा है अर्थात् तू मुझमें अपने मन और बुद्धि को स्थापित करने में सक्षम नहीं है तो अभ्यास रूपी योग के द्वारा मुझको प्राप्त करने का तुझे प्रयास करना चाहिए और यदि अभ्यास में भी अपने को असमर्थ पाता है तो एक सहज विधि तुझे बता रहा हूँ कि जितने भी सांसारिक कर्म तुम करते हो उन समस्त सांसारिक कर्मो को मेरे आश्रित कर दो और मेरे निमित्त ही समस्त कर्मो का सम्पादन करना आरम्भ कर दो। ऐसा करने से तुम सहज भाव से मेरा साक्षात्कार कर सकोगे।

8– यदि हमने जिन साधनों का उपरोक्त प्रकार से वर्णन किया है उन सबको भी करने में यदि तू अपने को समर्थ नहीं पाता है तो तुझे एक और सहज साधन बताता हूँ जिससे भी तू मेरा साक्षात्कार सहजता से कर

सकता है। मनुष्य का मन और उसकी बुद्धि सांसारिक विषयों में फंस जाती है। इस कारण वह संसार में ही भ्रमण किया करता है और सांसारिक कर्मो के सम्पादन से उनके फल की इच्छा भी करता है। इसलिए तू मन और बुद्धि पर नियंत्रण कर ले और अपने द्वारा किये जाने वाले समस्त कर्मो में फल के आश्रय का परित्याग कर दें। इस विधि से भी तू मेरा साक्षात्कार सहजता से कर लेगा।

9– हे अर्जुन! परमात्मा के साक्षात्कार के लिए जो अभ्यास किया जाता है उससे परमात्मा के ज्ञान को श्रेष्ठ मानना चाहिए और परमात्मा का जो ज्ञान है वह ध्यान से अर्थात् मेरे निरन्तर चिंतन से प्राप्त होता है। इसलिए ध्यान को ज्ञान से श्रेष्ठ माना जाता है परन्तु चूंकि समस्त कर्मो के फल का त्याग बहुत कठिनता से होता है। कारण कि प्रत्येक मनुष्य पहले जो कुछ कर्म करता है कर्म करने के पूर्व ही उसके फल के बारे में अवश्य विचार कर लेता है इसलिए कर्म फलों का परित्याग बहुत ही दुष्कर कार्य है। इसलिए इसे ध्यान से भी श्रेष्ठ माना जाता है। मनुष्य जब कर्म फलों का त्याग कर देता है अथवा सांसारिक विषयों वस्तुओं क्रियाओं आदि का परित्याग कर देता है तो उसे शीघ्र ही शान्ति प्राप्त हो जाती है और यह शान्ति परम शान्ति को प्रदान करने वाली रहती है।

10– हे अर्जुन ! मेरे प्रेमी भक्तों में कुछ विशिष्ट गुणों का समावेश हो जाता है। मेरे प्रेमी भक्तों में जो विशिष्ट गुण होते है उनका तुझको ज्ञान करवा रहा हूँ। इसे ध्यान से सुन। मेरे प्रेमी भक्त किसी भी प्राणी से ईर्ष्या, द्वेष नहीं रखते हैं। सभी के मित्र रहते हैं। क्योंकि उनका किसी से कोई स्वार्थ नहीं होता हैं। उनमें अनायास ही सभी प्राणियों के लिए दया का भाव रहता है परन्तु प्राणियों से आसक्ति न होने के कारण वे ममता के भाव से विगत हो जाते हैं। मेरे प्रेमी भक्तों में अहंकार का अभाव हो जाता है। इसलिए उन्हें सुख और दुःख में समता का भाव प्राप्त होता है। वे सभी को क्षमा प्रदान करने वाले होते है तथा निरन्तर ही मेरे ध्यान में ही भ्रमण करते हैं इसलिए संतुष्ट रहते हैं। ऐसे भक्त अपने मन और इन्द्रियों को जीत लेते हैं तथा मेरे स्नेह में दृढ़ भाव वाले होते हैं।

11– हे अर्जुन ! मेरे भक्त मुझमें मन और बुद्धि को समर्पित कर देते है। संसारी पुरूष ऐसा नहीं कर पाता है वह किसी भी प्राणी को परेशान नहीं करते हैं इस कारण कोई भी प्राणी उन्हें भी परेशान नहीं करता है। न तो उनमें हर्ष होता है और न अमर्ष तथा भय होता है। ऐसे भक्तों में किसी भी सांसारिक इच्छा का अभाव हो जाता है। इसलिए वे पूरी तरह से शान्त हो जाते हैं। वे अपने परमार्थिक कार्यो के प्रति पूरी तरह दक्ष होते हैं और किसी से स्वार्थ न होने के कारण उदासीनवत् भाव से रहते हैं इसलिए उनको संसार में किसी प्रकार की व्यथा नहीं होती है। अपने सुख के लिए किसी भी प्रकार का कर्म नहीं करते हैं क्योंकि मैं उन्हें उनकी वांछित वस्तुएं स्वयं ही उपलब्ध करवाता हूँ।

12– मेरा भक्त न तो प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है शोक और कामना भी नहीं करता है। शुभ और अशुभ सभी कर्मो का त्याग कर देता है। अपने शत्रु और मित्र में अपने मान और अपमान में शीत और ऊष्ण में समभाव वाला हो जाता हैं निन्दा स्तुति में सम रहता है। वह अपने आत्म कल्याण का चिंतन करता है। उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है तथा वह एकान्त में रहना चाहता है। इस प्रकार के गुणों से युक्त भक्त मेरे प्रिय है।

भक्तियोग–

ॐ

त्रयोदशोऽध्यायः

1– श्री भगवान ने कहा कि हे अर्जुन ! यह जो मानव शरीर है इसको क्षेत्र कहा जाता है। क्योंकि इसमें शुभ और अशुभ कर्म रूपी बीज पड़ने पर यह क्षेत्र अर्थात् शरीर शुभ और अशुभ फल ही देते हैं। समस्त क्षेत्रों को जो जान लेता है उस महापुरूष को क्षेत्रज्ञ कहा जाता है।

2– हे अर्जुन! सभी क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् चेतन शक्ति जीवात्मा भी मेरा अंश होने के कारण मुझे ही समस्त क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ जानना चाहिए। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो विशिष्ट ज्ञान है उसे जो मनुष्य जान जाता है वह तत्त्वदर्शी हो जाता है। ऐसा मेरा निश्चित मत है।

3– हे अर्जुन! ये जो क्षेत्र है उसमें जो भी विकार हैं और जो इसका कारण है और जो इसका प्रभाव है और वह जैसा है इन सबका विस्तार से मैं वर्णन करना चाहूंगा। इस सम्बन्ध में प्राचीनकाल में भी अनेक ऋषियों ने विस्तार से चर्चा की है। पवित्र वेदों में भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है तथा भगवान वेद व्यास द्वारा रचे गए ब्रह्मसूत्र के पदों में भी इस प्रकरण का युक्ति युक्त विनिश्चय किया गया है इसलिए मैं भी इस प्रकरण को विशिष्ट प्रकार से वर्णित करना चाहता हूँ।

4– पांच महाभूत अर्थात् पृथ्वी, वायु, जल अग्नि, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार तथा मूल प्रकृति और पांच कर्मेन्द्रियां तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां और उनके विषय अर्थात् शब्द रूप स्पर्श, गंध, रस इसके अतिरिक्त इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख यह स्थूल देह, चेतना, धृति, इन विकारों के सहित ये क्षेत्र संक्षेप रूप से वर्णित किया गया है।

5– हे अर्जुन! अब मैं तुझे ज्ञान की परिभाषा का बोध करवा रहा हूँ जिससे तू समस्त विकारों से विमुक्त हो जाएगा। जब तक यह विकार रहते है तब तक मनुष्य को सर्वथा अज्ञानी ही मानना चाहिए। क्योंकि उसमें ज्ञान का प्रकटीकरण ही नहीं हो पाता है।

6– मनुष्य में अपनी उत्कृष्टता के अहंकार का अभाव हो जाना चाहिए। दंभाचरण का नितान्त समापन हो जाए। अहिंसा, क्षमाभाव आदि गुण प्रकट हो जाए। समस्त प्राणी मात्र के प्रति मन और वाणी में एक सहज भाव आ जाए। अपने गुरूजन और आचार्यो की निष्काम भाव से सेवा की भावना प्रबल हो जाए। मनुष्य बाह्य रूप से आंतरिक रूप से शुद्ध रहने का प्रयास करें उसके अंतःकरण में अस्थिरता के भाव का अभाव हो जाए। मन और इन्द्रियां तथा शरीर संयमित हो जाए। इस संसार में जितने भी भोग है और मृत्यु के पश्चात जिन भोगों की प्राप्ति हो सकती है उनके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाए। अहंकार का अभाव होकर स्वस्वरूप में स्थिति रहे। इस जगत में पुनः जन्म, पुनः मृत्यु, बुढ़ापा, रोग आदि दोष है। इस कारण हमें जन्म और मृत्यु के चक्र से विमुक्त होना है ऐसा भाव आ जाए। तो यह सबका सब ज्ञान ही कहा जाएगा।

7– हे अर्जुन! इसके अतिरिक्त यदि मनुष्य में स्त्री, पुत्र घर, धन सम्पत्ति आदि के प्रति आसक्ति के भाव का अभाव हो जाए। किसी में ममता न रहे प्रिय की प्राप्ति में प्रसन्नता का अभाव हो और अप्रिय की प्राप्ति में दुःख का आभास न रहे। सदैव चित्त भी परमात्मा के ध्यान में संलग्न रहे तथा संसार के चिंतन का आश्रय छोड़कर एक मात्र परमात्मा के चिंतन का आश्रय ले लें और भक्ति से युक्त हो जाए। यदि मनुष्य में

एकान्त तथा तीर्थ आदि शुद्ध स्थानों में रहने का स्वभाव उत्पन्न हो तथा जो सांसारिक विषयी पुरूष हैं उनसे घृणा हो जाए। अध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त करने हेतु पुरूषार्थ में संलग्न हो जाए तथा तत्वज्ञान का नित्य दर्शन करें तो इसे भी ज्ञान कहा जाता है।

8– हे अर्जुन! उपरोक्त प्रकार से हमने जो कुछ भी वर्णित किया है उसको ज्ञान मानना चाहिए और इसके प्रतिकूल जो कुछ भी है वह सब अज्ञान है और इसी अज्ञान में संसार के समस्त मनुष्य अज्ञानी रहकर आचरण करते हैं। इसलिए वे अपने को श्रेष्ठ समझते है दम्भ का आचरण करते है प्राणियों को अनेक प्रकार से सताते है उनमें क्षमा भाव नहीं रहता। कटु वाणी का प्रयोग उनके द्वारा किया जाता है। आचार्यो और गुरूओं की सेवा के भाव से रहित हो जाते है। शुद्धि का परित्याग रहता है तथा स्थिरता का भी अभाव देखा जाता है मन इन्द्रियां और शरीर स्वेच्छाचारी होकर इस लोक और परलोक के भोगों की प्राप्ति में अपने को संलग्न रखते है घोर आसक्ति तथा अहंकार और वृद्धावस्था तथा रोगों के दुःख पर विचार नहीं करते है।

स्त्री, पुत्र, धन आदि में आसक्त रहकर उनमें ममता रखते हैं। प्रिय की प्राप्ति में प्रसन्न और अप्रिय की प्राप्ति में दुःख का आभास करते हैं ऐसे पुरूषों का चित्त भी समान नहीं रहता है। वे विषयी मनुष्यों में स्नेह रखते हैं तथा सांसारिक ज्ञान को ही श्रेष्ठ मानकर उसका सेवन करते रहते हैं। इस कारण वे सब अज्ञानी है।

9– हे अर्जुन ! जो तुम्हारे लिए जानने के योग्य है जो जानकर मनुष्य अमृत रूपी आनन्द को प्राप्त कर लेता है उसी की व्याख्या करने की मैं इच्छा करता हूँ और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को आपको बताना चाहता हूँ क्योंकि ब्रह्म न तो सत है और न ही असत है। वह तो विशिष्ट भाव वाला विशिष्ट रूप वाला है, उसकी विशिष्टता का हमें ज्ञान होना चाहिए।

10– हे अर्जुन! वह परमात्मा सभी ओर हाथ और पैरों वाला, सभी ओर नेत्र सिर और मुख वाला, सभी ओर कान वाला तथा संसार में सभी को अवृत करके स्थित है। एक विशेष तथ्य और भी है कि वह मनुष्य की तरह से इन्द्रियों से युक्त नहीं है। परन्तु सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों का आभास करने वाला है। उसकी प्राणियों से आसक्ति नहीं है फिर भी सबका पालन पोषण करता है। निर्गुण हो करके भी समस्त गुणों को जानता है। सर्वत्र संसार में सभी भूत प्राणियों में बाहर भी है और अन्दर भी है। चर और अचर भी वही है अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण उसे जाना जा पाना कठिन है। वह हमारे अत्यंत निकट भी है और अत्यंत दूर भी है। वह बॅटा हुआ भी है और एक रूप भी है। समस्त प्राणियों में विभक्त हुआ प्रतीत होता है तथा ब्रह्म के रूप में एक अक्षर भी है। वह विष्णु रूप से सभी प्राणियों का पालन पोषण करता है और रूद्र के स्वरूप में सबका विनाश कर डालता है तथा ब्रह्मा के रूप में सबकी उत्पत्ति का हेतु है।

11– संसार में जितनी भी ज्योतियां है वह सभी ज्योतियों का भी ज्योति है। अंधकार से अत्यंत परे है। ज्ञान स्वरूप है। जानने योग्य है, और ज्ञान से ही प्राप्त किया जा पाना संभव है तथा सबके हृदय मे विराजमान है। इस प्रकार क्षेत्र और ज्ञान का तथा जानने योग्य उस ब्रह्म का संक्षेप से वर्णन किया गया है जो भी मेरा भक्त है उपरोक्त वर्णित तथ्यों को जानकर मेरे ही स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

12– हे अर्जुन! प्रकृति और पुरूष इन दोनों का आदि नहीं है इसलिए इन्हें अनादि कहा जाता है। राग, द्वेष, विकारों को तथा सम्पूर्ण जगत में स्थित पदार्थो को प्रकृति ही उत्पन्न करती है। पंच महाभूत और उनके विषय तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्म इन्द्रियां मन बुद्धि और अहंकार इन सबकी उत्पत्ति में प्रकृति को ही कारण कहा गया है। जीवात्मा सुख और दुखों को भोगता है। इसलिए वह भोगने में हेतु है।

13– मनुष्य जब तक प्रकृति में स्थित रहता है तब तक वह प्रकृति से ही उद्भवित हुए सभी पदार्थो को भोगता रहता है और त्रिगुणों का साथ ही इस जीवात्मा को अच्छी बुरी नीची और ऊंची योनियों में जन्म ग्रहण करने का कारण होते हैं।

14– हे अर्जुन ! मानव शरीर में जो आत्मा है वह परमात्मा का अंश होने के कारण उसकी सहधर्मी है और उसका स्वरूप है। समस्त कार्यो का साक्षी भी है तथा कार्यो हेतु सहमति देने के कारण उसे अनुमन्ता कहा जाता है। जीव रूप से भोक्ता है। ब्रह्मा के उद्भव का कारण होने से वह स्वामी के स्वरूप में है इस लिए उसे महेश्वर कहते हैं।

15– हे अर्जुन! इस प्रकार से जो पुरूष को और गुणों के साथ इस प्रकृति को तत्त्व से जान जाता है अर्थात् यथावत् जानता है वह संसार में अनेक प्रकार के कर्तव्य कर्मो का निर्वहन करता हुआ मुक्त हो जाता है और पुनः जन्म को प्राप्त नहीं होता हैं।

16– परमात्मा के साक्षात्कार के अनेक उपाय हैं। अनेक मनुष्य अपनी विशिष्ट बुद्धि के द्वारा ध्यान में संलग्न होकर हृदय में स्थित उस परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं। क्योंकि परमात्मा की स्थिति समस्त प्राणियों के हृदय में है। इसके अतिरिक्त और भी जो परमात्मा का साक्षात्कार करने के इच्छुक है वह अन्य साधनों जैसे ज्ञान योग और कर्म योग आदि के द्वारा भी परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।

17– हे अर्जुन ! जिसमें ज्ञान योग, कर्म योग, ध्यान योग आदि के आचरण का ज्ञान न हो उन्हें मंदबुद्धि वाला पुरूष ही समझना चाहिए। ऐसे मन्द बुद्धि पुरूष दूसरे ज्ञानी पुरूषों के द्वारा साधन और प्रक्रिया का श्रवण करके परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते है और इस संसार सागर से निश्चित रूपेण पार हो जाते है।

18– संसार में जितने भी प्राणी उत्पन्न होते है वे सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न होते है जो पुरूष परमात्मा को अविनाशी और समभाव से स्थित हुआ समझ लेता है वही वस्तुतः उसका बोध कर लेता है।

19– सम्पूर्ण कर्म वस्तुतः प्रकृति के द्वारा ही किये जाते है। मनुष्य इस सम्बन्ध में अकर्ता ही है। इसलिए एक परमात्मा ही सर्वत्र विराजमान है और उस परमात्मा का दर्शन सभी प्राणियों में हमें करना चाहिए। वह परमात्मा अनादि, निर्गुण अविनाशी है। वह वस्तुतः कुछ भी नहीं करता तथा आकाश की तरह से सर्वत्र विराजमान है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग–

ॐ

चतुर्दशोऽध्यायः

1– श्रीभगवान ने कहा हे अर्जुन! इस प्रकार एक ही सूर्य इस समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशमय रखता है। वैसे ही एक ही आत्मा इस संपूर्ण क्षेत्र को अर्थात् समग्र प्राणियों के शरीर को प्रकाशित करता है तथा जो

महापुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के अंतर को प्रकृति और उसके कार्य सहित मोक्ष को प्राप्त होने को अपने ज्ञानरूपी नेत्रों द्वारा आभास कर लेते हैं वे साधुपुरुष अंततः ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं।

2– ऐसा कहकर श्रीभगवान ने गीता जी के चौदहवें अध्याय का आरंभ किया और अर्जुन से कहा कि इस जगत में समस्त ज्ञानों से भी उत्कृष्ट कोटि का जो परम ज्ञान है उसे मैं तुझको बतलाऊंगा। इसी उत्कृष्ट ज्ञान को जानकर अनेक मुनिजन परम सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं।

3– जो हमारे इस बताए हुए ज्ञान को अपने जीवन में अपनाकर अर्थात् उसका आश्रय लेकर मेरे स्वरूप का आभास कर लेते हैं। वे सृष्टि के आरंभ में उत्पन्न नहीं होते हैं और जब इस सृष्टि का अंत होता है तब उनमें कोई व्यथा नहीं होती।

4– हे अर्जुन! मेरी रचनात्मक शक्ति प्रकृति तो समस्त जीवों के लिए माता के स्वरूप में है और मैं पिता के स्वरूप में इस समग्र चेतन जगत को रचता हूं। इस प्रकार जड़ और चेतन के मिलन से ही समस्त भूत प्राणियों की उत्पत्ति संभव हो पाती है।

5– इस समग्र संसार में जो असंख्य प्रकार के जीव जंतु हैं, उनके असंख्य प्रकार के शरीर भी हैं। उन समस्त शरीरों की रचना प्रकृति करती है और मैं पिता के स्वरूप में समग्र जीवों की उत्पत्ति हेतु प्रयास करता हूं।

6– जीवात्मा वैसे तो बद्ध नहीं है परंतु वह प्रकृति से उत्पन्न तीन गुणों सत्व, रज, तम के कारण ही बद्ध अवस्था में आ जाती है। अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण ही इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बंधन देते हैं। प्रत्येक गुण पृथक्–पृथक् प्रकार से जीवात्मा को बंधन देता है।

7– सत्व गुण का स्वरूप निर्मल है, प्रकाशक है, और विकार रहित है। इस कारण सत्व गुण सुख की आसक्ति से तथा ज्ञान की आसक्ति से जीवात्मा को शरीर में बांध देता है। 8– हे अर्जुन! रजोगुण का स्वरूप राग रूप है। इसलिए रजोगुण राग रूप होने के कारण संसार की असंख्य कामनाओं और आसक्ति से इस जीवात्मा को कर्म की आसक्ति से बांध देता है।

9– तमोगुण की उत्पत्ति अज्ञान से होती है। इस कारण तमोगुण को अज्ञान के स्वरूप में ही जानना चाहिए। यह तमोगुण निद्रा, प्रमाद और आलस्य के द्वारा जीवात्मा को शरीर में बांध देता है तथा अहंकार और मोह की विशिष्ट उत्पत्ति करता है।

10– प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों के पृथक्–पृथक् कार्य हैं। सत्व गुण अनायास ही मनुष्य को सुख की ओर ले जाता है। अर्थात् सत्व गुण बढने पर मनुष्य की प्रवृत्ति सत्कर्मों की ओर स्वतः हो जाती है। इसी प्रकार रजोगुण मनुष्य को संसारिक कर्मों में लगा देता है। तथा तमोगुण अज्ञान को उत्पन्न करके निद्रा आलस्य और प्रमाद में मनुष्य को स्वतः ही लगाता है। इसलिए जब भी शरीर में सुख की आसक्ति हो तो सत्व गुण बढ़ा हुआ मानना चाहिए। जब संसारिक कर्मों में प्रवृत्ति हो जाए तो यह समझना चाहिए कि राजसी गुण बढ़ा हुआ है। और जब मनुष्य में निद्रा, आलस्य और प्रमाद उत्पन्न हो जाए तो समझना चाहिए कि तमो गुण बढ़ा हुआ है।

11– मनुष्य शरीर में तीनों गुणों की सत्ता रहती है। अर्थात् तीनों गुण मनुष्य शरीर में विद्यमान रहते हैं परंतु एक गुण बढ़ा हुआ होता है। और दो गुण दबे हुए होते हैं। अभिप्राय यह है कि जब सत्त्व गुण बढ़

जाता है तो रज और तम गुण दब जाता है। इसी प्रकार जब रजोगुण बढ़ जाता है तब सत्त्व और तम दब जाते हैं। वैसे ही तमोगुण के बढ़ने पर रज और सत्त्व स्वतः ही दब जाते हैं।

12– प्रत्येक मनुष्य में कौन सा गुण बढ़ा हुआ है इसको सहजता से ही आप जान सकते हैं। जिस मनुष्य में सत्त्व गुण बढ़ जाता है तो उस मनुष्य की इन्द्रियों मन और बुद्धि में विशेष चैतन्यता और ज्ञान का स्वतः उद्भव हो जाता है तथा परमार्थिक कार्यों में अनायास ही प्रवृत्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य यह विचार करता है कि हमारे इस मानव जीवन का क्या उद्देश्य है?

13– जब मनुष्य में रजोगुण बढ़ जाता है तो उसके अंतःकरण में लोभ संसारिक कार्यों में प्रवृत्ति अनेक प्रकार के संसारिक कर्मों का आरंभ, अशांति और विषय भोगों की इच्छा यह सब के सब स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए मनुष्य में जब संसार में अनेकानेक कर्मों के करने, संसार की वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा जागृत हो जाए तथा संसारिक भोगों की ओर स्वतः ही प्रवृत्ति हो जाए तो ऐसे मनुष्य में राजसी गुण प्रधान हो जाता है।

14– हे अर्जुन! जब मनुष्य में तमोगुण बढ़ जाता है तो उसमें अज्ञान विशेष का उदय होता है तथा विवेक, कर्तव्य कर्मों का अतिक्रमण, प्रमाद अर्थात् अनेक प्रकार की अनावश्यक चेष्टाऐं, निद्रा आदि ये सब स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। तमोगुण से आवृत मनुष्य किसी भी तथ्य का विपरीत अर्थ निकालता है। उसे शास्त्रों की बातों में कोई रुचि नहीं होती है और न ही वह शास्त्र सम्मत आचरण करता है। ऐसे मनुष्य को तमोगुणी मानना चाहिए। तमोगुणी मनुष्य में संसारिक भोगों की प्रवृत्ति बहुत विकृत हो जाती है।

15– मनुष्य अंततः मृत्यु को प्राप्त होता है। यदि मनुष्य में मृत्यु के समय सत्व गुण बढ़ा हुआ है तो वह मृत्यु के पश्चात श्रेष्ठ कर्म करने वाले अलौकिक स्वर्गादि लोकों को स्वतः पहुंच जाता है। इसमें किसी प्रकार का कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। सत्व गुण के परिणाम उसे स्वतः ही स्वर्ग लोक पहुंचा देते हैं।

16– यदि मनुष्य राजसी प्रवृत्ति का हो और रजोगुण की प्रधानता में उसकी मृत्यु हो जाए तो उसे पुनः अपने कर्मों के अनुसार इसी मृत्यु लोक में निश्चित आना पड़ता है। तमोगुण के बढ़ने पर यदि मनुष्य की मृत्यु होती है तो वह कीट, पशु, पक्षी आदि नारकीय योनियों में उत्पन्न होता है या तो नरकादिक लोकों को पहुंच जाता है।

17– हे अर्जुन! जो मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करते हैं उससे सत्व गुण की वृद्धि स्वतः हो जाती है और सत्व गुण की वृद्धि होने पर मनुष्य में ज्ञान और वैराग्य आदि उत्पन्न हो जाते हैं। ज्ञान और वैराग्य के आश्रय से जो कर्म होते हैं उनका फल भी शुभ होता है। इसी प्रकार राजसी कर्मों का फल अंततः दुख ही होता है। जैसे कोई मनुष्य अनेक प्रकार के संसारिक चेष्टाओं को करके अनेक प्रकार के संसारिक पदार्थों, धन, संपत्ति आदि को एकत्र कर लेता है तो अंततः धन, संपत्ति आदि विनाश होने के कारण उसे दुख ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार तमोगुण का परिणाम अज्ञान कहा जाता है। इससे मनुष्य का निश्चित पतन हो जाता है और तमाम प्रकार की नारकीय योनियों में उसे भ्रमण करना पड़ता है।

18– परमात्मा का विषय इन तीनों गुणों अर्थात् सत्व, रज और तम परे का है। जब तक मनुष्य इन तीन गुणों का सेवन करता है अर्थात् उनके आश्रय में रहता है तब तक वह परमात्मा की अनुभूति नहीं कर सकता। इसलिए साधक को यह स्पष्ट समझना चाहिए कि उसे तीनों गुणों की वृत्तियों का अतिक्रमण करना है। और ऐसा करने से ही उसे परमानंद की प्राप्ति हो सकती है।

19– अर्जुन ने पूछा कि हे भगवन! इन तीन गुणों अर्थात् सत्व, रज और तम गुणों से परे जाने वाले पुरुष की क्या स्थिति होती है ?और उसके क्या लक्षण हैं? वह संसार में किस प्रकार का व्यवहार करता है? तथा कोई भी मनुष्य इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कैसे कर सकता है?

20– श्री भगवान ने अर्जुन के उक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि जब मनुष्य साधना की पराकाष्ठा पर जाकर सत्व गुण के कार्य प्रकाश का रजोगुण के कार्य प्रवृत्ति का और तमोगुण के कार्य मोह का अतिक्रमण कर जाता है अर्थात् यदि त्रिगुणों के उक्त कार्य रूपों में किसी कारण प्रवृत्ति हो जाए तो उनमें द्वेष भाव नहीं रखता है। और उनसे निवृत्ति हो जाने पर उनकी इच्छा भी नहीं करता है। ऐसे पुरुष को त्रिगुणों से अतीत समझना चाहिए।

21– श्रीभगवान ने अर्जुन को त्रिगुणों से अतीत पुरुष के लक्षणों का व्याख्यान आगे किया और कहा कि साधना की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ व्यक्ति त्रिगुणों के प्रभाव से विचलित नहीं होता है और यह मानता है कि गुण ही गुण में व्यवहरित हो रहे हैं।

ऐसा समझकर वह परमात्मा में नित्य स्थित रहता है और उससे चलायमान नहीं होता।

22– त्रिगुणों से अतीत हुए पुरुष के कुछ विशेष स्थितियां भी हैं। जैसे सुख–दुख को समान समझना। मिट्टी पत्थर और सोने में समभाव रखना। प्रिय और अप्रिय को एक जैसा मानना। निंदा और स्थिति में समभाव रखना।

23– जो साधक मान, अपमान में, मित्र और शत्रु में समभाव वाला है तथा समस्त कार्यों के कर्तापन के अहंकार से विगत हो चुका है। ऐसा पुरुष गुणों से अतीत कहा जाता है।

24– श्रीभगवान ने कहा कि जो कोई पुरुष संसार का परित्याग करके एकमात्र मेरा ही चिंतन करता है वह निश्चित ही तीनों गुणों का अतिक्रमण करके मुझे ही प्राप्त होता है क्योंकि मैं ही अविनाशी ब्रह्म का, अमृत का, शाश्वत धर्म का तथा खण्डित न होने वाले सुख का एकमात्र आश्रय हूं।

गुणत्रयविभागयोग–

ॐ

पंचदशोऽध्यायः

1– श्री भगवान ने कहा कि ये संसार एक पीपल के वृक्ष के समान है। संसार में जितने वृक्ष होते हैं उनका मूल नीचे होता है और शाखा प्रशाखाऐं ऊपर होती हैं। परंतु ये जो संसार रूपी वृक्ष है। इसका मूल अर्थात जड़ ऊपर है और शाखाएं नीचे हैं।

2– परमात्मा को इस संसार वृक्ष का मूल मानना चाहिए और ब्रह्मा को इसकी मुख्य शाखा समझना चाहिए। पवित्र वेद इस संसार रूपी वृक्ष के पत्ते हैं जो इस अविनाशी संसार वृक्ष को मूल शाखा, तथा पत्तों सहित जान जाता है वह पवित्र वेदों के अभिप्राय का ज्ञाता हो जाता है।

3– ये संसार रूपी वृक्ष प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों के जल से सिंचित है तथा इसमें संसारिक विषय भोग रूपी कोपलें निकली हुईं हैं। देवता, मनुष्य और अनेक प्रकार की तिर्यक योनियां शाखा रूपी स्वरूप में नीचे और ऊपर सभी जगह विस्तार ले रही हैं। इस पृथ्वी लोक में कर्मों के आधार पर अहंकार, ममता और वासना के स्वरूप में जो जड़े हैं वो समग्रता से समस्त लोकों में फैल रही हैं।

4– ऊपर की शाखा वाले इस संसार वृक्ष को देखा तो नहीं जा सकता। क्योंकि इसका आदि है और न तो अंत ही है। परंतु इसकी प्रतिष्ठा भली प्रकार से है। इसमें जो अहंकार, ममता और संसारिक वासनाओं रूपी दृढ़ जड़ें हैं। ऐसे संसार रूपी पीपल के वृक्ष को अनाासक्ति रूपी शस्त्र द्वारा काट डालना चाहिए। हे अर्जुन! जब तक मनुष्य में अहंकार ममता और संसारिक वासनाओं का समापन नहीं होता तब तक मनुष्य इस संसार चक्र में ही घूमा करता है।

5– प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अहंकार का विनाश करे। ममता का परित्याग करे और संसारिक वासनाओं से निवृत हो। तदोपरांत उस परम पिता परमात्मा को जानने का प्रयास करे। क्योंकि उसको जानकर ही जन्म और मृत्यु के चक्र से निवृत्त हुआ जा सकता है।

मनुष्य को उस आदि पुरुष परमात्मा की शरण ग्रहण कर लेनी चाहिए तथा उसका निरंतर ध्यान करना चाहिए।

6– जो महापुरुष अपने मान के प्रति आसक्त नहीं होते हैं और संसारिक मोह को नष्ट कर देते हैं। जो महापुरुष संसार की आसक्ति रूपी दोष को जीत लेते हैं तथा जिनकी उस परमपिता परमात्मा में नित्य उपस्थिति हो जाती है और जो संपूर्ण कामनाओं को पूरी तरह से नष्ट कर देते हैं।

इस प्रकार सभी प्रकार के सुख दुखादि द्वंदों से विगत हुए ज्ञानी जन उस अविनाशी पद को निश्चित प्राप्त कर लेते हैं।

7– मेरे उस परम पद को सूर्य प्रकाशित नहीं कर सकता। वहां पर चन्द्रमा और अग्नि का प्रकाश नहीं है। यही मेरे उस परम धाम की विशेषता है। उस परम धाम को जो साधक प्राप्त कर लेता है। उसकी वापसी इस पृथ्वी लोक पर नहीं होती।

8– इस मानव शरीर में जो चैतन्यता का कारण जीवात्मा है उसे मेरा ही अंश निश्चित समझना चाहिए। वही जीवात्मा प्रकृति में स्थित मन और पांचों ज्ञानेन्द्रियों को आकर्षित करता है।

9– जिस प्रकार वायु किसी भी गंध के उद्गम स्थान से ग्रहण कर लेती है और अन्य स्थान पर ले जाती है उसी प्रकार इस शरीर का चैतन्य कारण जीवात्मा भी जब शरीर का परित्याग कर देता है तो वह मन के सहित समस्त इन्द्रियों को साथ लेकर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।

10– हे अर्जुन! एक विशिष्ट तथ्य तुम्हें समझना चाहिए। यह जीवात्मा वैसे तो निर्मल है परंतु समस्त ज्ञानेन्द्रियों, कान, नेत्र, त्वचा, जिह्वा, नासिका और मन के सहारे संसार के समस्त विषयों का सेवन कर लेती है। इस प्रकार विषयों के सेवन में समग्र इन्द्रियां और मन ही आश्रय के रूप में रहता है।

11– जब जीवात्मा इस शरीर को छोड़ती है अथवा शरीर में उपस्थित रहती है और उपस्थित रहकर विषयों को भोगती है तो इन क्रियाओं को अज्ञानी जन समझ नहीं पाते हैं। क्योंकि उन तीनों गुणों का प्रभाव रहता है। परंतु जो ज्ञान चक्षु वाले हैं अर्थात् बुद्धिमान पुरुष हैं वे इन समस्त क्रियाओं को जान जाते हैं।

12– जिन मनुष्यों ने अनेक प्रकार के यज्ञ, तप, दान आदि कर्मों से अपने को शुद्ध कर लिया है अथवा मेरा स्मरण करके भी अपने को पवित्र कर लिया है। ऐसे प्रयत्नशील योगी जन अपने हृदय में उपस्थित इस जीवात्मा का साक्षात्कार करते हैं परंतु जो लोग अज्ञानी हैं। वे पूरी तरह से प्रयत्न न करने के कारण इस आत्मा के स्वरूप का बोध नहीं कर पाते हैं।

13– हे अर्जुन! सूर्य में बहुत तेज है क्योंकि वह समग्र ब्रह्माण्ड को प्रकाश देता है। इसी प्रकार चन्द्रमा में भी बहुत तेज हैं वह भी कालानुसार समग्र ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है तथा अग्नि भी सर्वत्र उपस्थित रहकर प्रकाश उत्पन्न कर सकती है। परंतु सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि में जो प्रकाश है उसे मेरा ही प्रकाश जानना चाहिए। क्योंकि उसमें उनका अपना कोई प्रकाश नहीं है।

14– हे अर्जुन! मैं पृथ्वी में प्रवेश कर जाता हूं और प्रवेश करके समस्त प्राणि मात्र का भरण करता हूं तथा चन्द्रमा को वह शक्ति देता हूं जिससे समस्त प्रकार की वनस्पतियां पुष्ट होती हैं। इसलिए मैं समस्त जीवों का भरण–पोषण कर्ता तथा वनस्पतियों का पुष्टकर्ता मैं ही हूं।

15– भोजन के चार प्रकार होते हैं जिन्हें भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य कहा जाता है। इन चारों प्रकार के भोजन अन्न से ही निर्मित होता है। मैं ही इन चारों प्रकार के भोजन को वैश्वानर् अग्नि के रूप में पचाता हूं। इसके अतिरिक्त समस्त जीवों के शरीर में प्राण और अपान से जो श्वांस और प्रश्वांस रूपी गति होती है वह भी मैं ही हूं।

16– हे अर्जुन! मैं समग्र प्राणियों के हृदय में सदैव स्थित रहता हूं। इसके कारण ही समस्त प्राणियों में स्मृति रहती है। ज्ञान रहता है तथा अपोहन नामक विशिष्ट शक्ति रहती है। इससे अनेक प्रकार के संशय और मिथ्या ज्ञान स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। सभी प्रकार के पवित्र वेदों द्वारा जानने योग्य मैं ही हूं। समस्त वेदों का और वेदांत का रचयिता मेरे को ही जानना चाहिए।

17– इस जगत में दो प्रकार की सत्ता है। एक तो विनाशशील धर्म वाली है और दूसरी अविनाशी है। विनाशशील धर्म वाली सत्ता में समस्त जीवों के शरीरों को समझना चाहिए और जो अविनाशी सत्ता है वह तो जीवात्मा ही है।

18– इन दोनों सत्ता के अतिरिक्त विशिष्ट सत्ता तो दूसरी ही है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सभी का भरण और पोषण करती है। उसे ही ईश्वर और परमात्मा की संज्ञा दी जाती है।

19– मैं तो समस्त विनाशशील सत्ता से भी अतीत हूं और उसके परे हूं तथा इस अविनाशी जीवात्मा से भी उत्कृष्ट हूं। इस कारण संसार में और पवित्र वेदों में मुझे पुरुषोत्तम नाम से संबोधित किया जाता है।

20– मैं पुरुषोत्तम हूं इसलिए ज्ञानी पुरुष मेरा ही निरंतर भजन और कीर्तन करते हैं तथा मुझे ही भजकर अत्यंत रहस्य युक्त ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं।

पुरुषोत्तमयोग–

ॐ

षोडशोऽध्यायः

1– श्री भगवान ने कहा कि संसार में दो तरह के पुरूष है एक दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए और दूसरे आसुरी सम्पदा वाले। इन दोनों प्रकार के पुरूषों में पृथक्–पृथक् गुण होते हैं। हे अर्जुन! मैं तुम्हें दोनों प्रकार के पुरूषों के लक्षणों को विस्तार से बताना चाहूँगा जिसे सुनकर तू दोनों प्रकार के पुरूषों को पहचान सकेगा।

2– दैवीय सम्पदा को प्राप्त पुरूषों में भय का समापन हो जाता है क्योंकि वे भय के कारण को जान जाते है उनकी मनबुद्धि स्वच्छ होती है और वे परमात्मा के साक्षात्कार के लिए बहुत दृढ़ता से प्रयास करते रहते हैं। संसार के विषयों से विरक्ति का प्रयास और मानव कल्याण के लिए अपने कर्तव्य कर्मो का आचरण। यह दैवीय सम्पदा को प्राप्त पुरूषों की विशेषता है।

3– ऐसे पुरूष कर्तव्य– अकर्तव्य, कर्म–अकर्म के भेद को जानने के लिए अनेक प्रकार के शास्त्रों का स्वाध्याय किया करते हैं तथा मानसिक वाचिक और शारीरिक तप का नित्य अनुष्ठान करते हैं जिससे उनमें समस्त प्राणियों के प्रति सरलता का भाव स्वतः उत्पन्न हो जाता है।

4– दैवी सम्पदा को प्राप्त पुरूषों में हिंसा के भाव का सर्वथा विनाश हो जाता है और वे सभी के लिए हित कारक और यथार्थ वचनों को कहते है। वे जैसा अनुभव करते है और जैसा उनका व्यवहार होता है वैसे ही वे आचरण भी करते हैं। ऐसे पुरूषों में क्रोध का अभाव हो जाता है तथा वे सांसारिक वस्तुओं को सभी का मान कर चलते है। इसलिए उनके अंतःकरण में शान्ति स्वतः प्रकट हो जाती है।

5– ऐसे पुरूष किसी में दोषों को नहीं निकालते है और समस्त जीवों के प्रति उनमें करूणा का भाव विशेष रहता है। सांसारिक विषयों से यदि उनका संयोग हो भी जाता है तो वे उसमें आसक्त नहीं होते है। ऐसे पुरूषों में शास्त्र के प्रतिकूल व्यवहार में लज्जा रहती है। इस कारण वे अनावश्यक चेष्टाओं का सम्पादन नहीं करते।

6– अनेक प्रकार के तप यज्ञों, सत्य, अहिंसा, त्याग, शान्ति आदि का व्यवहार करने से उनमें स्वतः ही तेज प्रकट हो जाता है और वे क्षमा के प्रतिमूर्ति होते हैं। सांसारिक प्रतिकूलताओं के समय उनमें धैर्य रहता है तथा वे वाह्य और आन्तरिक रूप से शुद्ध रहने का प्रयास करते हैं। संसार के अन्य मनुष्यों के प्रति उनके मन में शत्रुता का भाव नहीं रहता है।

7– अनेक प्रकार के गुणों से युक्त होने के बावजूद भी वे अपने को श्रेष्ठ नहीं मानते है तथा यह नहीं चाहते है कि समाज में उनको सम्मान प्राप्त हो। इसलिए उपरोक्त प्रकार के लक्षण जिन व्यक्तियों में प्रकट हो तो उनको दैवी सम्पदा से युक्त मनुष्य मानना चाहिए।

8– हे अर्जुन ! इसके पश्चात् मैं तुमको आसुरी सम्पदा से युक्त पुरूषों के लक्षणों का भी विवरण दूँगा। जिससे तू ऐसे पुरूषों को सहजता से पहचान सकें।

9– आसुरी सम्पदा को प्राप्त पुरूषों में अपनी शक्ति, सामर्थ्य, धन, पद, बल आदि के प्रकटीकरण का विशेष भाव रहता है जो तत्त्व उनके पास नहीं रहता है उसको भी वह दम्भ पूर्वक प्रकट करते है। दर्प और

अभिमान के वशीभूत रहते है जिससे उनमें क्रोध का स्वतः ही प्रार्दुभाव हो जाता है। अन्य पुरूषों को कटुवचन बोलना तथा अज्ञानजनित बाते करना उनके स्वभाव में होता है।

10– हे अर्जुन ! दैवीय सम्पदा तो पुरूषों के मोक्ष में कारण होती है और आसुरी सम्पदा बंधन देती है। जिससे मनुष्य नाना प्रकार की नारकीय योनियों में घूमा करता है। वस्तुतः इस जगत में दो ही प्रकार की सृष्टि है एक तो दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए स्वभाव वालों और दूसरी आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए स्वभाव वालों की।

11– आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए स्वभाव वाले पुरूषों की संख्या इस जगत में अधिकाधिक है। इसलिए मैं ऐसे पुरूषों के अवगुणों का वर्णन विस्तार से करना चाहूंगा। आसुरी स्वभाव वाले पुरूषों को यह ज्ञान नहीं होता है कि उन्हें क्या करना चाहिए? और क्या नहीं करना चाहिए ? उनमें विशेषकर उत्कृष्ट व्यवहार, सत्य आचरण और बाहर तथा भीतर की शुद्धि भी नहीं होती है। इस कारण वे अधिकांशतः अशुद्ध ही रहते हैं।

12– आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य यह अवधारणा रखते हैं कि यह समग्र संसार प्रतिष्ठा विहीन है। इसमें सत्य का रंच मात्र भी अंश नहीं है तथा इसका कोई स्वामी भी नहीं है। यह तो केवल स्त्री और पुरूषों के संयोग से उत्पन्न हो गया है और कामना पूर्ति ही इसका उद्देश्य है।

इसके अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य है ही नहीं।

13– उपरोक्त प्रकार के विपरीत ज्ञान को मान कर इन लोगों का विचार निकृष्ट हो जाता है और उनकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है ऐसे मनुष्य संसार में अन्य मनुष्यों का अहित ही करते रहते हैं तथा हिंसा आदि कर्म करके संसार का नाश करने के लिए प्रवृत्त रहते है।

14– आसुरी स्वभाव के पुरूषों में दम्भ का आचरण विशेष रहता है। उन्हें मान सम्मान की आकांक्षा रहती है जिसके न मिलने पर वे अन्य लोगों के प्रति क्रोध का प्रदर्शन करते है। अपनी शक्ति का अहंकार उनमें रहता है और ऐसी कामनाऐं करते है जो कभी पूरी हो पाना असंभव रहता है।

15– ऐसे पुरूष के जीवन के जो सिद्धान्त है वे भी नितान्त भ्रमपूर्ण रहते हैं और वे संशय युक्त सिद्धान्तों का आश्रय लेकर अनेक प्रकार के ऐसे कर्म करते है जिससे समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाए और ऐसे विकर्मो के लिए वे निरन्तर प्रयत्नशील होते हैं।

16– आसुरी स्वभाव के पुरूषों में अनगिनत प्रकार की चिंताएं रहती हैं और वे जीवनपर्यन्त चिंताओं के ही आश्रय में जीते है तथा मृत्यु तक चिंताओं के जाल से निकल नहीं पाते है। विषय भोगों की प्राप्ति ही उनका एक मात्र लक्ष्य है और वह विषय भोगों में ही प्रसन्नता का आभास करते है।

17– संसार में आशारूपी तत्त्व बड़ा विशद है। मनुष्य वस्तुतः आशाओं से ही आबद्ध रहता है तथा आशाओं में ही जीता है। अनावश्यक आशाऐं मनुष्य की मृत्यु का हेतु होती है और बंधन का कारण होती है। इसलिए आसुरी स्वभाव के पुरूष अनन्त प्रकार की आशाओं में ही बंधे रहते है तथा सांसारिक कामनाओं और क्रोध के आश्रय में जीते है। यह विशेष रूप से अनेक प्रकार के सांसारिक भोगों को अन्याय पूर्वक एकत्र करने का प्रयास करते हैं। यह दूसरों के अधिकार की वस्तुओं को छीनकर उनका उपभोग करने की इच्छा प्रबल रखते है।

18– आसुरी स्वभाव के पुरूषों में यह भावना रहती है कि मैने आज संसार की अनेक वस्तुओं को प्राप्त कर लिया है और कल उन वस्तुओं को निश्चित ही प्राप्त कर लूंगा। वर्तमान में मेरे पास इतनी अधिक मात्रा में

धन है और भविष्य में इतना और अधिक हो जाएगा। मैने अपने उस शत्रु का विनाश कर दिया है और अन्य जो भी शत्रु होंगे उनका भी मैं सर्वथा विनाश कर दूंगा।

19– मैं तो ईश्वर के समान हूँ और संसार के समग्र ऐश्वर्यो को भोगने वाला हूँ इस जगत में जितनी भी सिद्धियां है वे सब मुझकों स्वतः ही प्राप्त है। मैं अत्यंत बलवान हूँ तथा मुझसे अन्य कोई सुखी व्यक्ति इस संसार में नहीं है।

20– मेरे पास असीमित धन है। मेरा परिवार भी बहुत बड़ा है। मेरे से अन्य लोगों की तुलना संभव नहीं है अर्थात् मेरे समान अन्य कोई नहीं है। मैं ही तो यज्ञ करूंगा। सभी को दान दूंगा तथा ऐसा करके सांसारिक भोगों को भोगूंगा।

21– इस प्रकार के अनेक अज्ञानजनित सिद्धान्तों में इनका जीवन बीतता है और उनका चित्त भ्रमित रहता है तथा उनमें मोहरूपी संजाल बहुत विस्तृत हो जाता है और उनकी विषय भोगो में यह सक्ति रहती है। इसलिए इस प्रकार के जो आसुरी स्वभाव के पुरूष है वे अत्यंत अपवित्र नरको में स्वतः ही गिर जाते है।

22– आसुरी स्वभाव के पुरूषों में एक विशेष अवगुण होता है। वे अपने आप को स्वतः ही संसार में उत्कृष्ट मानते है और अपने सिद्धान्त के प्रति हठधर्मी भी होते हैं। अपने धन और सम्मान के मद से सदैव युक्त रहते हैं तथा ऐसे यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं जिनमें पाखण्ड और तामसी वृत्ति विशेष रहती है तथा शास्त्र विधि का दूर–दूर तक सम्पादन नहीं रहता है।

23– आसुरी स्वभाव के पुरूषों में अहंकार, बल, घमंड, कामना, क्रोध आदि अवगुण विशेष होते हैं। इस कारण वे समाज के अन्य पुरूषों की निंदा किया करते हैं। इसके अतिरिक्त वे संसार की उत्पत्ति पालन पोषण और संहार करने वाले परमात्मा से भी द्वेष करते हैं। इसलिए मैं ऐसे पापकर्मी दूषित मनुष्यों को संसार में बहुत दुःख देता हूँ और उन्हे अनेक प्रकार की आसुरी योनियों में ही डालता हूँ।

24– आसुरी स्वभाव के पुरूष मुझको तो कदापि प्राप्त नहीं होते हैं बल्कि वे अनेक त्रियक् योनियों में भ्रमण करके भयंकर नर्को में जाते हैं। हे अर्जुन ! मनुष्य को कामना, क्रोध और लोभ इन तीन अवगुणों को अपने से निकाल देना चाहिए। क्योंकि इनको नर्क का द्वार और स्वयं का विनाश कर देने वाला कारण कहा गया है। इसलिए इन तीनों से मुक्त हुआ मनुष्य निश्चय ही अपने कल्याण के मार्ग को खोज लेता है तथा परम गति को प्राप्त हो जाता है।

25– हे अर्जुन ! वस्तुतः कर्म और अकर्म के आचरण में शास्त्रों को ही प्रमाण मानना चाहिए और शास्त्र सम्मत कर्मो के आचरण करने का प्रयास करना चाहिए। जो कोई भी मनुष्य शास्त्र की मर्यादा को तोड़कर उसका अतिक्रमण करके अशास्त्रीय विधि से व्यवहार करता है उसका यह आचरण स्वेच्छाचारी होता है। इसलिए ऐसे मनुष्य को न तो सिद्धि प्राप्त होती है और न सुख प्राप्त होता है और न ही मोक्ष प्राप्त होता है।

दैवासुरसम्पद्विभागयोग–

सप्तदशोऽध्यायः

1– अर्जुन ने श्री भगवान से पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन! जो कोई मनुष्य शास्त्र की मर्यादा को विखंडित करके श्रद्धा से युक्त होकर अनेक प्रकार के देवी देवताओं की पूजा उपासना करते है उनकी श्रद्धा सात्विक होती है, राजसी होती है अथवा तामसी होती है।

2– श्री भगवान ने अर्जुन के उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए यह कहा कि हे अर्जुन ! मनुष्यों की शास्त्रों के अतिक्रमण से उत्पन्न और उनके अपने स्वभाव से उद्भवित श्रद्धा तीन प्रकार की होती है। जिसे सात्विक श्रद्धा, राजसी श्रद्धा और तामसी श्रद्धा कहा जाता है। इन तीनों प्रकार की श्रद्धा का मैं वर्णन कर रहा हूँ।

3– हे अर्जुन ! संसार में जितने भी मनुष्य है उनकी श्रद्धा उनकी मन और बुद्धि के आधार पर ही रहती है। क्योंकि सभी मनुष्य श्रद्धा से युक्त रहते है। इस कारण जो मनुष्य जिस प्रकार की श्रद्धा वाला है उसकी श्रद्धा स्वयं भी प्रकट रहती है और वह मनुष्य वैसा ही प्रतीत होता है अर्थात् सात्विक श्रद्धा वाला मनुष्य सात्विक स्वरूप में प्रकट होता है। राजसी श्रद्धा वाला मनुष्य राजसी स्वरूप में प्रकट होता है और तामसी श्रद्धावाला मनुष्य तामसी स्वरूप में प्रकट होता है।

4– हे अर्जुन ! जो मनुष्य संसार में अनेक प्रकार के देवी देवताओं की पूजा करते रहते है तथा उनसे सांसारिक वस्तुओं की याचना करते है उन पुरूषों को सात्विक श्रद्धा वाला पुरूष मानना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो कोई पुरूष यक्ष और राक्षसों को उनकी पूजा विधि के अनुसार अनेक प्रकार के अनुष्ठानों का सम्पादन करता है यह अनुष्ठान वस्तुतः संसार की अनेक वस्तुओं के लिए किये जाते हैं इसलिए ऐसे पुरूषों को राजसी श्रद्धा वाला पुरूष मानना चाहिए। इसके अतिरिक्त संसार में एक प्रकार की श्रद्धा विशेष है जो तामसी कही जाती है। ऐसे श्रद्धा से युक्त मनुष्य भूत प्रेतों को पूजते है तथा तांत्रिक उपासना में विश्वास रखते है।

5– इस संसार में एक अन्य प्रकार के पुरूष भी है जो अहंकार, दंभ, कामना, आसक्ति, और सामर्थ्य के अभिमान से युक्त हो जाते हैं तथा जिन तपों का शास्त्रों में उल्लेख नहीं है उन तपों का व्यवहार करते हैं। जैसे भयंकर सर्दी में नंगे बदन रहना। आग को जलाकर उसके मध्य बैठना। कांटों पर सोना, घोर और भयंकर धूप में बैठकर तपते रहने का पाखंड करना। ऐसे पाखण्डी पुरूष वस्तुतः आसुरी स्वभाव के होते है और उन्हें निश्चित रूपेण असुर ही मानना चाहिए क्योंकि उपरोक्त प्रकार के अशास्त्रीय कर्मो से मुझे भी पीड़ा होती है क्योंकि मैं ही तो उनके शरीर में उपस्थित रहता हूँ।

6– मनुष्य को भोजन भी अपने स्वभाव के अनुसार प्रिय होता है तथा यज्ञ, तप और दान भी मनुष्यों के पृथक्–पृथक् स्वभाव के अनुसार रहते हैं। क्योंकि यह सब गुणों के आधार पर होता है। अर्थात् जो व्यक्ति जिस गुण से आवृत और आच्छादित होता है वह उसी प्रकार के भोजन में प्रियता का आभास करता है तथा वैसा ही यज्ञ तप और दान भी करता है। इसलिए भोजन यज्ञ, दान और तप को मैं तुझे विस्तार से बताऊँगा।

7– सात्विक पुरूषों को स्वभाव से ही ऐसे भोजन की इच्छा रहती है जिससे आयु, बुद्धि, सामर्थ्य आरोग्यता, सुख और स्नेह बढ़े। चूंकि ऐसे भोजन से रस से संयुक्त चिकने और स्थिर रहने वाले होते हैं। सात्विक पुरूषों को इसी प्रकार के भोजन प्रिय है। इन भोजनों में फल आदि और उनके रसों को विशेष मानना चाहिए।

8– राजसी पुरूषों को कडुवा, खट्टा, बहुत नमकीन, गर्म, तीखा, रूखा और दाह से युक्त भोजन प्रिय होता है। इस प्रकार के भोजन को करने से मनुष्य को दुःख शोक तथा अनेक प्रकार के रोग स्वतः ही उत्पन्न हो जाते है। जो मनुष्य इस प्रकार के भोजन को चाहे उसे राजसी पुरूष मानना चाहिए।

9– हे अर्जुन! जो पुरूष तामसी होते है उन्हें मांस, मदिरा तथा ऐसा भोजन प्रिय होता है जो दुर्गन्ध युक्त हो, बासी हो और अपवित्र हो। इस प्रकार के भोजन में प्रियता का होना तामसी गुणों के कारण ही होता है। जो मनुष्य उक्त प्रकार के भोजन की इच्छा करे उसे तामसी पुरूष ही समझना चाहिए।

10– प्रत्येक मनुष्य को अपने गुणों के आधार पर ही यज्ञ, दान, तप कर्म प्रिय होते हैं। इसलिए वह अपने गुणों के आधार पर ही इनका सम्पादन करता है। सात्विक मनुष्य ऐसे यज्ञों का सम्पादन करता है जो शास्त्र सम्मत होते हैं अर्थात् शास्त्रीय विधि से युक्त रहते हैं। ऐसे पुरूष मन में यह अवधारणा करते हैं कि हमें यज्ञ करना यथेष्ट है। इसलिए यज्ञों का सम्पादन किय जाना चाहिए तथा यज्ञों के सम्पादन में अनेक प्रकार के फलों की इच्छा का भी परित्याग होना चाहिए जो पुरूष इस प्रकार के यज्ञों का सम्पादन करता है उस पुरूष को सात्विक पुरूष मानना चाहिए।

11– हे अर्जुन ! राजसी पुरूष तो परिणाम को दृष्टि में रखकर अर्थात् परिणाम की ओर अवधारणा करके अनेक प्रकार के सांसारिक यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं और इस प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करके वे दम्भ आदि से आवृत हो जाते हैं। जहां पर फल की इच्छा हो और दम्भ का प्रार्दुभाव हो। वैसे यज्ञों को राजसी यज्ञ कहा जाता है।

12– तामसी मनुष्य ऐसे यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं जिसमें शास्त्रीय विधि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता तथा उसमें अन्न का दान भी नहीं होता। मंत्रों की आवश्यकता का आभास भी नहीं होता। श्रद्धा और दक्षिणा के बिना जिन यज्ञों का सम्पादन होता है उन्हें तामसी यज्ञ मानना चाहिए।

13– हे अर्जुन! तप भी तीन प्रकार के है। सात्विक मनुष्य सात्विक प्रकार के तपों का अनुष्ठान करते है। राजसी पुरूष राजसी तपों का अनुष्ठान करते हैं और तामसी पुरूष तामसी तप को किया करते हैं। चूंकि तप के तीन प्रकार है। जिन्हें शारीरिक, वाचिक, कायिक कहा जाता है। शारीरिक तप में देवताओं, ब्राह्मणों, आचार्यो, ज्ञानी जनों की पूजा उपासना, पवित्र रहने की क्रिया सरल भाव का आचरण, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का अनुष्ठान यह सब शारीरिक तप कहे जाते हैं। जब मनुष्य ऐसी वाणी बोलता है जिससे दूसरे मनुष्य उदिग्न नहीं होते हैं तथा जो वाणी अन्य मनुष्यों के लिए प्रिय और कल्याण का कारण हो तो इसे वाचिक तप कहा जाता चाहिए। इसके अतिरिक्त श्री भगवान के नाम का जप पवित्र वेदों और शास्त्रों के स्वाध्याय रूपी कर्म भी इसी वाचिक तप में आते हैं।

14– हे अर्जुन ! मानसिक तप भी विशेष प्रकार के होते हैं। मन में जब मनुष्य प्रसन्नता के भाव को उपार्जित करता रहता है। सौम्य भाव से रहता है। भगवान के स्वरूप का ही चिंतन करने का प्रयास करता हैं मन को सांसारिक विषयों से हटाकर संयमित करता है। मन और बुद्धि के भावों को अच्छी प्रकार से पवित्र रखता हैं तो इस प्रयास को मानसिक तप कहा जाता है।

15– सात्विक तपों में मनुष्य फल की इच्छा का परित्याग कर देता है तथा अत्यंत श्रद्धा से युक्त होकर उपरोक्त तीनों प्रकार के तपों का अनुष्ठान करता है। परन्तु जब मनुष्य राजसी स्वभाव का हो जाता है तो उक्त तीनों प्रकारों के तपों के अनुष्ठान में सम्मान, सत्कार और स्वयं की पूजा का भाव प्रबल रखता है तथा अपने स्वार्थ और पाखण्ड से उक्त तीनों तपों का अनुष्ठान होता है। इस प्रकार राजसी तपो के अनुष्ठान से संसार में कुछ फल तो प्राप्त हो सकता है।

16– तामसी मनुष्य अत्यंत हठ पूर्वक स्वयं को कष्ट देकर दूसरों के विनाश के लिए शारीरिक, मानसिक और वाचिक तपों का अनुष्ठान करते हैं। अर्थात् देवता, ब्राह्मण, गुरू आदि की पूजा दूसरों के अहित के लिए हो तो इसे तामसी तप ही मानना चाहिए।

17– हे अर्जुन ! दान भी वस्तुतः तीन प्रकार का होता है। जिनका पृथक्–पृथक् उल्लेख मैं कर रहा हूँ। जब मनुष्य में यह भाव आ जाता है कि हमें अपने द्वारा श्रम से उपार्जित धन में कुछ दान अवश्य देना चाहिए और यह दान देशकाल और पात्र को दृष्टि में दूसरों के हित की इच्छा रखकर दिया जाता है तो उस दान को सात्विक कहा जाता है।

18– राजसी और तामसी दान भी पृथक्–पृथक् प्रकार के होते है। जब कोई भी दान अत्यंत कष्टपूर्वक तथा स्वयं के उपकार की भावना को रखकर फल की इच्छा के भाव से दिया जाता है तो वह दान राजसी दान कहा जाता है। दान प्राप्त करने वाले का सम्मान भी न किया जाए वरन् उल्टे उसका तिरस्कार किया जाए तथा दान प्राप्त करने वाला मनुष्य दान प्राप्त करने का पात्र भी न हो और उसे बिना सम्मान के जो दान दिया जाता है वह तामसी दान कहा जाता है।

19– परमात्मा के तीन विशिष्ट नाम है जिसे ॐ तत् सत् कहा जाता है। यह तीन नाम सभी प्रकार के उपासकों के लिए विशेष निर्देश है। इनसे ही सृष्टि जब आरम्भ हुई तो ब्राह्मणों का, वेदों का और यज्ञों का प्रादुर्भाव हो गया। इसलिए परमात्मा के इन नामों का विशेष महत्व है। साधक चाहे किसी भी पृष्ठ भूमि का हो वह परमात्मा के इन नामों का जप कर सकता है और इन नामों के जप से उसे विशेष अध्यात्मिक लाभ होता है।

20– ॐ का प्रयोग वेद मंत्रों के आरम्भ में यज्ञ, ज्ञान और तप रूपी क्रियाओं को आरम्भ करने के पूर्व किया जाता है। इसलिए परमात्मा के नाम के निर्देश हेतु ॐ का प्रयोग होता है।

21– तत रूपी परमात्मा का नाम उन महापुरूषों द्वारा यज्ञ और तप रूपी क्रियाओं में तथा दान रूपी क्रिया में भी प्रयोग किया जाता है, जो फल की आकांक्षा का परित्याग कर चुके है।

22– चूंकि इस ब्रह्माण्ड में एक मात्र परमात्मा ही सत है और शेष असत है। इसलिए ब्रह्माण्ड में परमात्मा ही सत्ता के प्रकटीकरण के लिए सत् शब्द का प्रयोग होता है।

23– संसार की जितनी भी क्रियाएं है, जो मानव मात्र के कल्याण के लिए की जाती है वे परमात्मा की सत सत्ता का प्रकटीकरण करती है। सत् शब्द से यह माना जाता है कि उस परमात्मा की इस जगत में सत्ता है और उसकी ही व्यवस्था इस जगत में प्रभावी है तथा उसके अतिरिक्त अन्य किसी की भी सत्ता नहीं है। इसलिए परमात्मा का सत् नाम विशिष्ट है जिसका महत्व प्रत्येक साधक को समझना चाहिए।

24– हे अर्जुन ! मनुष्य यदि यज्ञ दान, तप आदि जो कुछ भी कर्म करता है वह यदि अन्य लोगों के हितार्थ नहीं करता है तो वह सबका सब स्वार्थ के लिए ही करता है। स्वयं के कल्याण के लिए जो कर्म किये जाते

है वे सभी असत ही माने जाते हैं। वस्तुतः स्वयं के कल्याण के लिए किये जाने वाले कर्मो का परिणाम अंततः दुखदायी होता है। इस कारण राजस का फल दुःख ही कहा गया है। मनुष्य यदि यज्ञ, दान तप आदि कर्म लोक कल्याण के लिए करे तो उसको इस संसार में भी बहुत लाभ मिलता है तथा मृत्यु के पश्चात् भी वह परलोक में अनेक प्रकार के सुखों को भोगता है परन्तु जो पुरूष अपने स्वार्थ के लिए स्वलाभ के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ दान और तप कर्मो का अनुष्ठान करते हैं उनके लिए इस संसार में भी कोई विशेष लाभ नहीं मिलता तथा मृत्यु के पश्चात् किसी विशेष लाभ के मिलने की संभावना ही नहीं रहती है और ऐसे पुरूषों को इस संसार चक्र में दुःखों के भंवर में ही घूमना पड़ता है।

25– प्रत्येक मनुष्य को यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है वह सबका सब विनाश शील प्रकृति का है तथा अविनाशी एक मात्र परमात्मा ही है। विनाश शील सत्ता को असत् कहा जाता है और अविनाशी सत्ता को सत कहा जाता है। इसलिए परमात्मा का सत नाम विशिष्ट है।

श्रद्धात्रयविभागयोग– ७ ४७

अष्टादशोऽध्यायः

1– अर्जुन ने कहा हे भगवान वासुदेव! मैं अब संन्यास और त्याग के तथ्य को पृथक्–पृथक् रूप से जानने की इच्छा करता हूँ अर्थात् संन्यास और त्याग क्या है इस बारे में मैं विस्तार से जानना चाहता हूँ।

2– अर्जुन के ऐसा प्रश्न करने पर श्री भगवान बोले कि इस सम्बन्ध में अनेक महापुरूषों के पृथक्–पृथक् विचार है। पहले मैं महापुरूषों के पृथक्–पृथक् विचारों को आपके समक्ष वर्णित कर रहा हूँ तत्पश्चात् अपने निश्चित मत का प्रकटीकरण करूंगा।

3– श्री भगवान ने कहा कि कुछ मनुष्य काम्य कर्मो के परित्याग को ही संन्यास का स्वरूप समझ लेते है और दूसरे जो बुद्धिमान पुरूष है वह सभी कर्मो के परिणाम के त्याग को त्याग की संज्ञा देते है। अन्य विद्वान यह अवधारणा रखते है कि सभी कर्म दोषों से ही युक्त है इसलिए सभी कर्मो का परित्याग कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरे महापुरूष यज्ञ, दान, तप, आदि कर्मो को त्यागने योग्य नहीं बताते है। अब इस विषय में मेरा निश्चित मत जो है उसका अवलोकन कीजिए।

4– त्याग वस्तुतः तीन प्रकार का होता है जिसे सात्विक त्याग, राजसी त्याग और तामसी त्याग कहा जाता है। यथार्थ में यज्ञ दान और तप रूप कर्म है वे वस्तुतः सभी पुरूषों के लिए कर्तव्य कर्म है। अर्थात् इनका परित्याग करना मनुष्य के लिए कल्याणप्रद नहीं है क्योंकि यज्ञ दान और तप रूप कर्मो से ही मनुष्यों में पवित्रता आती है। इसलिए यज्ञ दान और तप रूपी कर्म तथा मनुष्य मात्र के लिए जितने भी शास्त्र संगत कर्म हैं उनको आसक्ति तथा फलों की इच्छा के त्याग के साथ अवश्य ही सम्पादित करना चाहिए। यह मेरा निश्चित और अत्यंत और उत्कृष्ट मत है।

5– श्री भगवान ने कहा कि जो मनुष्य के लिए निश्चित कर्म है जिससे मनुष्य का स्वयं का और मानव मात्र का कल्याण हो जाता है। उनका त्याग मनुष्य को किसी भी स्थिति में नही करना चाहिए और यदि मोह के कारण उनका त्याग करना पड़े तो इस प्रकार के त्याग को तामसी त्याग कहा जाता है।

6– वस्तुतः संसार के जितने भी कर्म हैं उनके सम्पादन में श्रम विशेष तो होता है क्योंकि बिना श्रम के किसी भी कर्म का सम्पादन नहीं हो सकता है। यदि कोई भी मनुष्य यह समझ ले कि हमको शारीरिक श्रम से दुःख प्राप्त होगा और ऐसा समझ कर वह कर्तव्य कर्मो का ही त्याग कर दे तो इस प्रकार के त्याग को राजस त्याग कहा जाता है और ऐसा त्याग करके मनुष्य को किसी भी प्रकार का सांसारिक फल नहीं प्राप्त होता है।

7– हे अर्जुन! अब मैं सात्विक त्याग के विषय में आपको विशिष्ट भाव प्रदान कर रहा हूँ। वस्तुतः प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह शास्त्रसम्मत कर्मो को प्रथमता जानें और उन शास्त्र सम्मत कर्मो का अनुष्ठान करें। शास्त्र सम्मत कर्मो के सम्पादन में दो तथ्यों का परित्याग कर लेना चाहिए। एक है आसक्ति का परित्याग और दूसरा है फल का परित्याग। जब शास्त्र सम्मत कर्मो में आसक्ति और फल का परित्याग हो जाता है तो उसी त्याग को सात्त्विक त्याग कहा जाता है।

8– हे अर्जुन ! एक विशिष्ट प्रकार के त्यागी मनुष्य का वर्णन भी यहां करना समीचीन होगा। जो मनुष्य अकुशल कर्मो के प्रति द्वेष भाव नहीं रखता और कुशल कर्मो में आसक्त नहीं होता ऐसा सत्त्व गुण से युक्त पुरूष निःसंदेह ही सच्चा त्यागी कहा जाता है क्योंकि किसी भी मनुष्य के लिए समग्रता से समस्त कर्मो का परित्याग किया जाना संभव नहीं है।

9– हे अर्जुन ! जो मनुष्य कर्म फल का परित्याग नहीं करते हैं वे कर्मो के फल को तीन प्रकार से प्राप्त करते है। अर्थात् शुभ कर्मो का तो उन्हें शुभ फल प्राप्त होता है और अशुभ कर्मो का अशुभ फल प्राप्त होता है तथा शुभाशुभ कर्मो का मिश्रित फल प्राप्त होता है। इसका अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य शुभ कर्म करता है उसे सुख प्राप्त होता है जो अशुभ कर्म करता है उसे दुःख प्राप्त होता है और जो मिश्रित कर्म करता है उसे सुख और दुःख दोनों ही स्वतः प्राप्त होते रहते हैं।

10– किसी भी कर्म की सिद्धि के लिए सांख्य दर्शन में पांच तथ्यों का उल्लेख किया गया है। यह पांच तथ्य कर्मो की सिद्धि के लिए अनिवार्य तथ्य है। यह तथ्य है अधिष्ठान, कर्ता, पृथक्–पृथक् प्रकार के करण तथा अनेक प्रकार की पृथक्–पृथक् चेष्टाएं तथा पांचवां कारण दैव कहा जाता है।

11– हे अर्जुन इस प्रकार कोई भी कर्म चाहे वह शास्त्र के प्रतिकूल हो अथवा शास्त्रसम्मत हो, उक्त पांच कारण ही कर्मो की सिद्धि के हेतु कहे जाते हैं। वस्तुतः यह जो मानव शरीर है यही कर्मो का अधिष्ठान है और वह कर्ता भाव से कर्मो का सम्पादन करता है। इस मानव शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां मन, बुद्धि और अहंकार यह करण है। इन करणों से ही मनुष्य अनेक प्रकार की पृथक्–पृथक् प्रकार की चेष्टाएं करता रहता है और जो चेष्टाएं करता है उसका परिणाम परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार उसे निश्चित प्राप्त हो जाता है। इसी को दैव समझना चाहिए। यह समस्त प्रक्रिया स्वचालित है ।

12– संसार में अनेक प्रकार के ऐसे मनुष्य हैं जो कर्मो के सम्पादन के इन पांच तथ्यों को नहीं जानते है और स्वयं को अनेक प्रकार के कर्मो का कर्ता समझ लेते है। वस्तुतः मनुष्य कोई कर्म नहीं करता है परन्तु जब वह वास्तविकता को नहीं समझता तो उसे मूर्ख कहा जाता है। जो मनुष्य कर्मो के सम्पादन की वास्तविकता को जान लेता है वही बुद्धिमान हो जाता है तथा जो नहीं जान पाता है वह कर्तापन के भाव से आवृत होकर नाना प्रकार के योनियों में भ्रमण करता है।

13– हे अर्जुन ! वह मनुष्य संसार में बहुत श्रेष्ठ है, जो सांसारिक कर्मो में कर्तापन के भाव से विरक्त हो गया है ऐसे पुरूष की बुद्धि संसार में अनेक प्रकार के शास्त्र सम्मत कर्मो को करके भी लिपायमान नहीं

होती है। वस्तुतः यदि वह अपने को अकर्ता मान ले अर्थात् कर्तापन के अभिमान से विमुक्त हो जाए तो वह सब लोकों को मार कर भी पाप से नहीं बंध सकता है। इसलिए मनुष्य को कर्तापन के भाव का परित्याग कर देना चाहिए।

14– हे अर्जुन ! मनुष्यों को सांसारिक कर्मो की जो प्रेरणा होती है उसके भी कारण हैं इन कारणों में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय प्रमुख हैं तथा कर्मो के सम्पादन के पश्चात् जो कर्म संग्रह होता है उसके भी तीन कारण हैं जिसे कर्ता, करण और क्रिया कहा जाता है। वस्तुतः जो अनेक तथ्यों को जानने वाला है उसे ज्ञाता सम्बोधित किया जाता है और जिस विधि से हमे संसार के अनेक तथ्यों का बोध होता है उसे ज्ञान कहा जाता है और जो वस्तुएं हमारी संज्ञानता में आ जाती है उसे ज्ञेय कहा जाता है। जो मनुष्य अनेक प्रकार की सांसारिक क्रियाओं का सम्पादन करता है उसे कर्ता कहा जाता है और जो सम्पादन होता है वह क्रिया के रूप में होता है तथा समस्त कर्मो का जो परिणाम है वह कर्म संग्रह के रूप में संचित होता जाता है।

15– हे अर्जुन! अब मैं तुझको ज्ञान के तीन भेदों के बारे में पृथक्–पृथक् रूप से बताना चाहता हूँ। जितने भी प्राणी हैं उन सबमें परमात्मा उपस्थित है और उस परमात्मा को जो मनुष्य सभी प्राणियों में पृथक्–पृथक् रूप से न बॅटा हुआ देखता है तो इस ज्ञान को सात्विक ज्ञान जानना चाहिए क्योंकि परमात्मा तो एक ही है परन्तु वह अपने को पृथक्–पृथक् प्राणियों में बॉट कर रखता है। यह एक विलक्षण बात है।

16– जो मनुष्य उस परमात्मा को भिन्न–भिन्न प्रकार से नाना प्रकार के भावों में पृथक्–पृथक् देखता है ऐसे ज्ञान को राजसी ज्ञान कहा जाता है क्योंकि राजसी मनुष्य को परमात्मा की स्थिति के बारे में संशय विशेष रहता है। इसी प्रकार जो मनुष्य अपने शरीर में ही आसक्त रहता है और शरीर को ही सभी कुछ समझता है। इसलिए उसकी शरीर के प्रति विशेष आसक्ति होती है। ऐसे तर्क विहीन और बिना आधार वाले ज्ञान को तामस ज्ञान कहा जाता है।

17– ज्ञान के उपरान्त मैं तुझे कर्म के तीन स्वरूपों अर्थात 1– सात्विक कर्म, 2– राजस कर्म तथा 3– तामस कर्म के बारे में पृथक्–पृथक् बताना चाहता हूँ। जब मनुष्य शास्त्र सम्मत कर्मो को अर्थात जैसा शास्त्र में उल्लेख है वैसा समझ कर और आसक्ति रूपी दोष को छोड़कर फल की आकांक्षा का परित्याग करके राग द्वेष से रहित कर्म करता है तो वो सारे कर्म सात्विक कहे जाते हैं। इसलिए शास्त्र सम्मत कर्म आशक्ति रहित कर्म, फल की इच्छा का परित्याग वाले कर्म और राग द्वेष से रहित कर्म मनुष्य को करने चाहिए यह उसका कर्तव्य विशेष है।

18– हे अर्जुन ! इन सांसारिक कर्मो में बहुत परिश्रम होता है अर्थात् जो बहुत श्रम से किये जाते हैं और भोगों की इच्छा को रखकर किये जाते हैं ऐसे मनुष्यों में अहंकार विशेष रहता है। इस प्रकार के राजसी मनुष्यों के द्वारा किये गए कर्मो को राजसी कर्म कहा जाता है।

19– अनेक प्रकार के तामसी मनुष्य कुछ तथ्यों पर विचार न करके कर्म करते रहते हैं। उन तथ्यों में कर्म के परिणाम, कर्म से उत्पन्न होने वाली हानि जीव मात्र की हिंसा आदि विशेष है। इसलिए तामसी मनुष्य अपने द्वारा किये गए कर्मो के परिणाम उससे उत्पन्न होने वाली हानि तथा जीवों की हिंसा पर विचार नहीं करता है और अपनी शक्ति से बाहर जाकर उचित अनुचित पर विचार न करके कर्मो का सम्पादन करता है। ऐसे समस्त प्रकार के कर्मो को तामसी कर्म कहा जाता है।

20– हे अर्जुन! कर्मो के उपरान्त तीन प्रकार के कर्ता के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत करना आवश्यक है। कर्ता तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें 1– सात्विक कर्ता 2– राजसी कर्ता तथा 3– तामसी कर्ता कहा जाता है। जो

मनुष्य संसार की आसक्ति से विगत हो गया है और अहंकार का प्रकटीकरण नहीं करता है। धैर्यता से तथा उत्साह से संलग्न होकर कर्मो का सम्पादन करता है इन सबके करने के पश्चात् भी उसे कार्य में सिद्धि अथवा असिद्धि नहीं मिलती है तो वह प्रसन्नता और दुःख का प्रकटीकरण नहीं करता है तो इस प्रकार के कर्ता को सात्विक कर्ता माना जाता है।

21– जो मनुष्य संसार की अनेक आसक्तियों से युक्त होकर कर्मो के परिणाम की आकांक्षा को ध्यान में रखकर लोभ के निमित्त दूसरों को हानि पहुंचाने के उद्देश्य को रखकर कर्म करता है ऐसा कर्ता राजसी कर्ता कहा जाता है वह अशुद्ध भी रहता है तथा वस्तुतः प्रसन्नता और दुःख में भी संलग्न हो जाता है।

22– हे अर्जुन ! जिस मनुष्य को यह ज्ञान नहीं होता है कि उसे क्या करना चाहिए? अथवा क्या नहीं करना चाहिए ? यह ज्ञान न होने के कारण वह बोध से रहित, दुराग्रही, मूर्ख और अन्य मनुष्यों की जीविका के संसाधन का विनाश करने वाला होता है। ऐसा कर्ता तामसी कर्ता कहा जाता है। इस प्रकार के कर्ता में प्रतिकूलताओं में शोक बहुत होता है। वह आलसी और ऐसे भाव रखता है जो किसी भी प्रकार से प्राप्त किया जा पाना संभव न हो।

23– मनुष्यों में तीन प्रकार की बुद्धि विशेष होती है। हे धनन्जय ! इन तीनों प्रकार की बुद्धि का वर्णन भी अत्यावश्यक है। जिसे सात्विक बुद्धि, राजसी बुद्धि और तामसी बुद्धि कहा जाता है जो मनुष्य यह जान जाता है कि हमें किस ओर प्रवृत्त होना है और संसार में किससे निवृत्त होना है? तथा क्या कर्तव्य कर्म है? और क्या अकर्तव्य कर्म हैं ? किससे मुझे भयभीत होना चाहिए और किस प्रकार हमें अभय को प्राप्त करना चाहिए। किस प्रकार बंधन होता है और मनुष्य की मुक्ति किस प्रकार हो जाती है। इन उक्त समस्त तथ्यों को जानने वाली बुद्धि को सात्त्विक बुद्धि कहा जाता है।

24– राजसी मनुष्य के अन्दर राजसी बुद्धि विशेष होती है। ऐसे पुरूषों में संशय विशेष रहता है। इसलिए धर्म और अधर्म के विषय में कर्तव्य और अकर्तव्य के विषय में संशयग्रस्तता रहती है तथा उन्हें वास्तविक तथ्य का ज्ञान नहीं होता है जो धर्म अधर्म और कर्तव्य अकर्तव्य के बारे में वास्तविक ज्ञान नहीं रखता उसकी बुद्धि को राजसी बुद्धि समझना चाहिए।

25– हे अर्जुन! तमोगुण से आच्छादित पुरूषों में तामसी बुद्धि होती है। तामसी बुद्धि का विशेष लक्षण है कि वह अधर्म को ही धर्म मान लेती है और जीवन में प्रत्येक तथ्य का प्रतिकूल अर्थ निकालती है। ऐसे मनुष्यों में शास्त्रों के प्रति असम्मानित भाव रहता है। शास्त्रों की आलोचना करना उनका विशेष कार्य है।

26– हे अर्जुन ! बुद्धि के उपरान्त मनुष्य में धृति अर्थात् धारण शक्ति के बारे में भी बताना आवश्यक है, क्योंकि धारणा की सामर्थ्य से ही मनुष्य अनेक प्रकार की सांसारिक क्रियाओं का सम्पादन करता है। यह धारणा भी तीन प्रकार की होती है जिसे सात्त्विक धृति, राजसी धृति तथा तामसी धृति कहा जाता है। जो कोई मनुष्य संसार के विषयों के विचारण का परित्याग करके एक मात्र परमात्मा के विषय का विचारण मन और बुद्धि से करता है तथा प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को परमात्मा में समाहित कर देता है इस प्रकार की धारणा को सात्विक धारणा कहते है।

27– हे अर्जुन ! संसार में अनेक पुरूष सांसारिक आसक्तियों से संलग्न होकर धर्म अर्थ और कामनाओं का धारण करता है। ऐसे पुरूषों में फल की इच्छा विशेष रहती है। इसलिए ऐसी धारणा को राजसी धृति मानना चाहिए।

28– हे पार्थ ! तामसी मनुष्यों में तामसी धारणा विशेष होती है। वे इस धारणा के द्वारा ही निद्रा, भय, चिंता, दुःख, मद आदि का परित्याग ही नहीं कर पाते है। यदि मनुष्य में निद्रा का परित्याग न हो, भय का परित्याग न हो, चिंता का परित्याग न हो, दुःख का परित्याग न हो, मद का परित्याग न हो तो उसे तामसी धारणा वाला व्यक्ति समझना चाहिए।

29– हे अर्जुन ! अब मैं तुझे तीन प्रकार के सुखों का बोध करवाना चाहता हूँ क्योंकि सुख भी तीन प्रकार के होते है जिन्हें सात्त्विक सुख, राजसी सुख और तामसी सुख कहा जाता है। जब मनुष्य संसार के ध्यान का परित्याग करके परमात्मा के ध्यान का अभ्यास करने का प्रयास करता है और परमात्मा के ध्यान में ही रमना चाहता है तो उसे निश्चित ही दुःखों का संयोग प्राप्त होना समाप्त हो जाता है। यद्यपि जब संसार का संयोग समाप्त करने का प्रयास होता है और परमात्मा के स्मरण का प्रयास होता है तब वह प्रारम्भ में तो विष के समान प्रतीत होता है परन्तु उसका फल अमृत के समान है। इसलिए परमात्म विषयक चिंतन से जो प्रसन्नता प्रकट हो जाती है और उससे जो सुख मिलता है वह सात्त्विक सुख कहा जाता है।

30– हे अर्जुन ! सांसारिक विषयों का उपभोग करने के लिए परमात्मा ने मनुष्य को इन्द्रियां प्रदान की हैं जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को सांसारिक भोगों में संलग्न रखता है तो भोग के समय मनुष्य को सुख की प्रतीति होती है और परिणाम में उसे दुःख का आभास होता है। इसलिए इस प्रकार के क्षणिक सुख को राजसी सुख कहा जाता है।

31– तामसी सुख तो भोग काल में अर्थात् आरम्भ में ही दुःखद प्रतीत होता है और उसका परिणाम तो अत्यंत दुःख देने वाला है। तामसी मनुष्य निद्रा, आलस्य एवं प्रमाद में ही सुख का आभास करता है परन्तु उसे हिंसा आदि कर्म में भी सुख की अनुभूति होती है ऐसे सुख को तामसी सुख मानना चाहिए।

32– हे अर्जुन ये जो मेरी प्रकृति है इसने तीन गुणों को विशिष्ट रूप से उत्पन्न कर दिया है और इन तीन गुणों का प्रभाव आकाश में, स्वर्ग लोक में, पृथ्वी लोक तथा समस्त लोकों में व्याप्त हो रहा है। इन तीन गुणों के अतिरिक्त या उनके प्रभाव से कोई भी विमुक्त नहीं है।

33– हे परन्तप ! मेरे द्वारा ही सृष्टि के आदि में चार वर्णो की स्थापना की गई। इन वर्णो को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाता है। ये वर्ण गुण और कर्मो के आधार पर ही विभाजित किये गए हैं। ब्राह्मण में गुण विशेष होते हैं जिससे वह श्रेष्ठ समझा जाता है। ब्राह्मणों के नौ विशेष गुण हैं। मन को संयमित रखना, अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाना, तपश्चर्या का अनुष्ठान करना, बाहर व भीतर से शुद्धि रखना, अन्य व्यक्तियों के द्वारा जो दुष्कर्म किये जाते हैं उनको क्षमा कर देना, सहज भाव रखना, परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करना तथा उसकी सत्ता की अनुभूति करना और परमात्मा के साक्षात्कार का प्रयास करना। यह ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण हैं।

34– इसी प्रकार क्षत्रिय के भी स्वाभाविक गुण विशेष है जिन्हें शौर्य, तेज, धृति, कुशलता, युद्ध में पलायन न करने की प्रवृत्ति, दान तथा परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करना। यह सभी क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण हैं। जिन व्यक्तियों में यह गुण विशेष आ जाते है उन्हें क्षत्रिय स्वभाव का मानना चाहिए।

35– कृषि गोरक्षा और व्यवसाय यह वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं तथा सभी लोगों की सेवा करना यह शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।

प्रत्येक मनुष्य अपने वर्ण के अनुसार कर्मो में यदि लग जाता है तो वह निश्चय ही परमात्मा का साक्षात्कार करके परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है और जिस प्रकार से वह परमगति को प्राप्त करता है उस विधि को मैं तेरे लिए कहता हूँ।

36– मनुष्य किसी भी वर्ण और आश्रम का व्यक्ति हो उसे अपने स्वाभाविक कर्मो के द्वारा एक मात्र परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिए, क्योंकि वह परमात्मा ही समस्त प्राणियों को उत्पन्न करता है। इस कारण वह इस जगत का हेतु है।

37– हे अर्जुन ! मनुष्य के जो स्वाभाविक कर्म हैं वह उन्हें स्वाभाविक रूप से करता है अर्थात् उनका सम्पादन स्वभावतः होता जाता है। जो कोई मनुष्य अपने स्वाभाविक कर्मो का परित्याग करके अन्य मनुष्यों के स्वाभाविक कर्मो के सम्पादन का प्रयास करता है वह तो नष्ट हो जाता है इसलिए मनुष्य को अपने सहज स्वाभाविक कर्मो को करना चाहिए, चाहें वह दोष से युक्त भी हो। क्योंकि समस्त कर्म उसी प्रकार दोषयुक्त है जैसे अग्नि धुऐं से व्याप्त हो जाती है और उसे ढक लेती है।

38– मनुष्य को निष्कर्मता से कर्म करके नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्ति हो जाती है। निष्कर्मता से कर्म करने के लिए तीन तथ्य विशेष हैं। 1–संसार की आसक्ति का परित्याग करने वाली बुद्धि से कर्म करें। 2–संसार की आवश्यकताओं की अनुभूति का समापन कर दे और 3–मन और बुद्धि को अपने पुरूषार्थ द्वारा सांसारिक विषयों से हटाकर परमात्मा में लगा दे। इस प्रकार उक्त तीन तथ्यों के आधार पर कर्म करने से मनुष्य नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

39– नैष्कर्म्य सिद्धि ज्ञान योग की अत्यंत उच्च निष्ठा है, इसलिए इस प्रकार की सिद्धि को मनुष्य कैसे प्राप्त करता है? उसका उल्लेख इस स्थल पर अत्यावश्यक प्रतीत होता है इसलिए मैं इस प्रकरण का उल्लेख कर रहा हूँ।

40– साधक को अपनी बुद्धि को अशुद्ध सांसारिक विषयों से हटाकर शुद्ध कर लेना चाहिए तथा परमात्मा चिंतन में ही स्वयं को संलग्न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त शरीर को ऊर्जा देने वाला भोजन करना चाहिए। इन्द्रिय विषयों का परित्याग कर देना चाहिए। शुद्ध और एकाकी स्थान में निवास करना चाहिए। सात्त्विक धारणा का सेवन करना चाहिए। इन्द्रिय मन और बुद्धि को शरीर सहित वश में कर लेना चाहिए। राग द्वेष को नष्ट कर देना चाहिए। वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए। अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोध का परित्याग कर देना चाहिए।

सांसारिक वस्तुओं के संग्रह की इच्छा को छोड़ देना चाहिए। परमात्मा के ध्यान में मग्न हो जाना चाहिए और ममता रहित तथा शान्ति युक्त होकर परमात्मा का चिंतन करना चाहिए। ऐसा मनुष्य परमात्मा में ही एकाकार हो जाता है और उसका मन प्रसन्न हो जाता है। वह न तो शोक करता है और न किसी की आकांक्षा करता है तथा सभी प्राणियों में समभाव से उपस्थित रहता है। ऐसी स्थिति को मेरी पराभक्ति की उपलब्धि मानना चाहिए।

41– उक्त क्रियाओं के सेवन से अर्थात् मेरी पराभक्ति से वह मुझको तत्त्व से जान लेता है। तत्त्व से जानने का अभिप्राय यह है कि परमात्मा कैसा है? कितना है? उसकी सत्ता कैसी है? इस तथ्य का बोध हो जाए तो इसे परमात्मा को तत्त्व से जानना कहा जाता है। ऐसा ज्ञान हो जाने पर मनुष्य शीघ्र ही मुझमें प्रवेश कर लेता है और मेरी दया के कारण शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त कर जाता है।

42– मनुष्य को एक मात्र मेरा ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। मेरे ही सहारे रहना चाहिए और मन को संसार से हटाकर मेरे में समर्पित कर देना चाहिए। किसी को बुद्धि योग कहा जाता है जो मनुष्य इस प्रकार के चित्त वाला हो जाता है वह समस्त प्रकार के सांसारिक दुर्गुणों को छोड़कर इस संसार से पार हो जाता है। हे अर्जुन! यदि तू मेरे द्वारा कहे गए वचनों को नहीं सुनेगा और सुनकर उनका आचरण नहीं करेगा तो निश्चय ही नष्ट हो जाएगा तथा अधःपतन को प्राप्त होगा।

43– हे अर्जुन ! यदि तू अहंकार का सहारा लेकर यह अवधारणा कर रहा है कि मैं अब युद्ध नहीं करूंगा तो तेरा यह विनिश्चय सही सिद्ध नहीं होगा क्योंकि तेरी प्रकृति ही तुझे युद्ध में लगा देगी। युद्ध के आरम्भ होने पर तू स्वतः स्वभावतः युद्ध मे उद्यत हो जाएगा। इसलिए यदि मोह के कारण तू युद्ध नहीं करना चाहता तो भी स्वाभाविक कर्म तुझे युद्ध करने के लिए बाध्य कर देंगे।

44– हे अर्जुन ! परमात्मा ही समस्त प्राणियों के शरीर में उपस्थित रहता है और इस शरीर रूपी यंत्र में उपस्थित रहकर अनेक प्रकार की क्रियाओं का अपनी माया के सहयोग से संचालन करता है। उसकी उपस्थिति तो हृदय में है परन्तु उसकी माया के द्वारा ही मनुष्य शरीर के समस्त अंगों से अनेक क्रियाओं को करता रहता है इसलिए तू सभी सांसारिक कर्मो का परित्याग करके एक मात्र मेरी शरण को ग्रहण कर लें।

45– मैने इस अत्यंत रहस्य प्रद ज्ञान को तेरे प्रति कहा है इस ज्ञान पर भली प्रकार से विचार करके तू जैसा भी करना चाहता है वैसा कर। परन्तु एक बार पुनः मै तेरे लिए एक अत्यंत रहस्ययुक्त तथ्य को कहूंगा क्योकि तू मेरा अत्यंत प्रिय है इसलिए मैं चाहता हूँ कि तेरा कल्याण हो। इस कारण अंतिम बार मैं तुझे वह ज्ञान देना चाहूंगा।

46– हे अर्जुन ! मुझमें ही मन को समर्पित कर मेरा ही भक्त हो मेरी ही उपासना कर और मुझको ही नमस्कार कर। ऐसा करने से ही तु मुझे निःसंदेह प्राप्त हो जाएगा। तू मेरा अत्यंत प्रिय है इसलिए अनेक प्रकार के सांसारिक कर्मो का परित्याग कर तू एक मात्र मेरी शरण को ग्रहण कर ले। ऐसा करने पर मैं तुझे तेरे समस्त पापों से उन्मोचित कर दूंगा। तू शोक मत कर।

47– श्री भगवान बोले ! इस अत्यंत गोपनीय गीता ज्ञान को तप रहित, भक्ति रहित और जो सुनने की इच्छा न रखता हो तथा मुझमें उसका दोष भाव हो उसके प्रति कभी नहीं कहना चाहिए परन्तु जो पुरूष मेरे भक्तों में इस गीता शास्त्र को कहेगा उससे अधिक प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई अन्य पुरूष इस पृथ्वी लोक पर न हुआ है और न भविष्य में होगा। मात्र इस गीता शास्त्र के पाठ से ही मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित हूंगा। समस्त प्रकार के यज्ञों में ज्ञान यज्ञ ही श्रेष्ठ है, इसलिए गीता ज्ञान का श्रवण करना चाहिए जो समस्त पापों को क्षय करने का एक विशेष साधन है।

48– हे अर्जुन ! मैं समझता हूँ कि तूने इस गीता रूपी ज्ञान को बहुत मन से एकाग्रचित्त होकर सुना है और अब तेरा यह अज्ञान से उत्पन्न मोह भी पूर्णतयः नष्ट हो गया है। ऐसा मेरा मानना है।

49– अर्जुन ने कहा कि हे भगवान! आपकी अतिशय कृपा से मेरा मोह समाप्त हो गया है और मैने अपने स्वस्वरूप की स्मृति का बोध कर लिया है। मेरे संशय का समापन होने के कारण मेरी स्थिति आप में हो गयी है और मैं अब आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।

50– संजय ने कहा कि हे राजन! इस प्रकार मैने भी भगवान श्री वासुदेव और महात्मा अर्जुन के इस विचित्र गोपनीय रोमांचक संवाद को सुन लिया है। यह महर्षि वेदव्यास की कृपा ही है कि मैने इस परम रहस्यप्रद ज्ञान को श्री भगवान के मुख से साक्षात् कहते हुए सुना है। हे राजन! भगवान श्रीकृष्ण के उस

पुण्यात्मक और अलौकिक संवाद को अनेकों बार याद करके मैं अति प्रसन्न हो रहा हूँ। हे राजन! श्री हरि के उस अत्यंत अद्‌भुत विराट स्वरूप का पुनः पुनः स्मरण होता है और ऐसा स्मरण करके मैं महान आश्चर्य में पड़कर अत्यधिक प्रसन्नता को प्राप्त हो रहा हूँ। हे राजन ! मेरा यह विचार है कि जहां पर योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण है और जहां पर धनुर्धर अर्जुन हैं वहीं पर श्री विजय विभूति और ध्रुवनीति है। ऐसा मेरा स्पष्ट मानना भी है।

परमात्मा के ॐतत् सत् नाम से यह उपनिषद तथा ब्रह्मविद्यारूपी योगशास्त्र का मोक्षसंन्यासयोग नाम से उल्लिखित अठारहवॉ अध्याय पूर्ण हुआ ।

इस प्रकार सम्पूर्ण भगवद्‌गीता के अठारहों अध्यायों की व्याख्या का भावार्थ संक्षिप्त रूप से वर्णित किया गया है।